



श्री अरविन्द कर्मधारा

21 फरवरी, 2020 वर्ष 50 अंक 1

श्री अरविन्द आश्रम-दिल्ली शाखा
श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली

श्री अरविन्द कर्मधारा

श्री अरविन्द आश्रम

दिल्ली शाखा का मुखपत्र

फरवरी 2020

(अंक-1)

संस्थापक

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फकीर'

सम्पादन : अपर्णा रॉय

विशेष परामर्श समिति

कु0 तारा जौहर, विजया भारती,

ऑनलाइन पब्लिकेशन ऑफ श्री अरविन्द

आश्रम, दिल्ली शाखा

(निःशुल्क उपलब्ध)

कृपया सब्सक्राइब करें-

saakarmdhara@rediffmail.com

कार्यालय

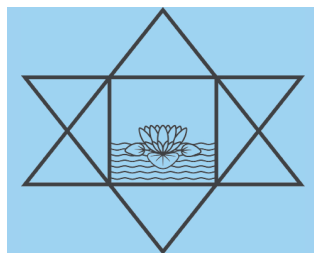
श्री अरविन्द आश्रम, दिल्ली-शाखा

श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

दूरभाष: 26567863, 26524810

आश्रम वैबसाइट

(www.sriarobindoashram.net)



लक्ष्य-प्राप्ति

चाहे तपस्या द्वारा हो या समर्पण द्वारा, इसका कोई महत्व नहीं है, महत्वपूर्ण बस यही चीज है कि व्यक्ति दृढ़ता के साथ अपने लक्ष्य की ओर अभिमुख हो। जब एक बार कदम सच्चे मार्ग पर चल पड़े तो कोई वहाँ से हटकर ज्यादा नीची चीज की ओर कैसे जा सकता है ? अगर आदमी दृढ़ बना रहे तो पतन का कोई महत्व नहीं, आदमी फिर उठता है और आगे बढ़ता है। अगर आदमी अपने लक्ष्य की ओर दृढ़ रहे तो भगवान् के मार्ग पर कभी अन्तिम असफलता नहीं हो सकती। और अगर तुम्हारे अन्दर कोई ऐसी चीज है जो तुम्हें प्रेरित करती है, और वह निश्चित रूप से है, तो लड़खड़ाने, गिरने या श्रद्धा की असफलता का परिणाम में कोई महत्वपूर्ण फर्क नहीं पड़ेगा। संघर्ष समाप्त होने तक चलते जाना चाहिये। सीधा, खुला हुआ और कंटकहीन मार्ग हमारे सामने है।

-श्री अरविन्द



ॐ आनन्दमयि चैतन्यमयि सत्यमयि परमे श्रीअरविन्द कर्मधारा

प्रार्थना और ध्यान

हे प्रभो ! तीन महीने की अनुपस्थिति के बाद इस मकान में लौटना जो तुझे समर्पित है, मेरे लिये दो अनुभूतियों का अवसर हुआ। पहली तो यह कि बाहरी सत्ता में, मेरी सतही चेतना में अब ऐसा कोई भाव नहीं है कि मैं अपने ही मकान में हूँ या मैं किसी भी चीज की मालकिन हूँ..., मैं पहले जो नहीं जानती थी उसे जानकर मुस्कराती हूँ। जाने से पहले मेरे अंदर यह विचार था कि मैं इस 'घर की मालकिन' हूँ अब मुझे इस भाव के विचार पर मुस्कान आती है। यह जरूरी था कि सारे घमंड को तोड़ दिया जाये ताकि मैं कम से कम चीजों को उस रूप में समझने, देखने और अनुभव करने योग्य हो जाऊँ जैसी कि वे हैं। हे प्रभो, मैंने यह मकान तुझे समर्पित कर दिया है, मानो मेरे लिए यह संभव था कि मैं किसी चीज पर अधिकार कर पाती और फिर तुझे अर्पित कर देती। सब कुछ तेरा है, हे नाथ, तू ही सब चीजों को हमारे हाथों में सौंपता है लेकिन हमारी अंधता कितनी बड़ी है कि हम यह कल्पना करते हैं कि हम किसी चीज के स्वामी हो सकते हैं। यहाँ भी हर जगह की तरह मैं एक दर्शक माल हूँ। मनुष्यों के बीच अजनबी, फिर भी उनके जीवन की अंतरात्मा, उनके हृदय का प्रेम हूँ।

दूसरी अनुभूति यह है कि मकान का सारा वातावरण धार्मिक गंभीरता से भरा हुआ है, यहाँ आदमी एकदम गहराइयों में उतर जाता है, ध्यान ज्यादा संचित और अधिक गंभीर होता है, बिखराव गायब हो जाता है और उसकी जगह लेती है एकाग्रता, और मैं अनुभव करती हूँ कि यह एकाग्रता शब्दशः मेरे मस्तिष्क से उतरकर हृदय में प्रवेश कर रही है और मेरा हृदय मेरे मस्तिष्क की अपेक्षा अधिक गहराई में जा पहुँचता है। ऐसा लगता है मानों तीन महीनों से मैं अपने मन के द्वारा प्रेम कर रही थी और केवल अब ही मैंने अपने हृदय के द्वारा प्रेम करना शुरू किया है और यह अपने साथ भाव की अतुलनीय गंभीरता और मधुरिमा लाता है।

मेरी सत्ता में एक नया द्वार खुल गया है और मेरे आगे एक विशालता प्रकट हो गयी है।

मैं भक्ति के साथ देहली पार करती हूँ मुझे नहीं लगता कि मैं नजर से ओझल परंतु भीतर अदृश्य रूप से प्रकाशमान इस गुप्त मार्ग पर पाँव रखने योग्य हूँ।

== अनुक्रम ==

1	संपादकीय		5
2	नववर्ष के आगमन की प्रार्थना	श्रीमाँ	6
3	श्री अरविन्द कर्मधारा का आरंभ	श्री द्वारिका प्रसाद द्वारा से प्राप्त विवरण	7-9
4	श्री अनिल जौहर-एक प्रेरणा	स्मृति	10-11
5	नव जन्म	त्रियुगी नरायण	12-14
6	भागवत् युद्ध -(दिल्ली) स्थापना	श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर	15-20
7	भावी दिव्य चेतना	सुमितानंदन पंत	21-22
8	प्रेम का तरीका	श्रीमाँ	23-24
9	कप्तान तारा जौहर के साथ श्रीमाँ का पत्र व्यवहार	संकलन	25
10	कुछ संस्मरण: 'मदर इण्डिया' का जन्म	अमल किरण	26-28
11	श्रीमाँ का जन्मदिन	सियाराम पालीवाल	29-31
12	श्रीमाँ का स्वरूप और उनका कार्य	चन्द्रदीप	32-36
13	भागवत सृष्टि उद्देश्य व श्री अरविंद आश्रम दिल्ली एक परिचय -करुणामयी		37
14	नया सफ़र	विमला गुप्ता	38
15	तपस्या का मर्म	नलिनीकांत गुप्त	39-40
16	आश्रम की गतिविधियाँ		41-45

संपादकीय

नव वर्षाभिनन्दन के साथ कर्मधारा के नवीन अंक का आरंभ करते हुए पाठकों के साथ इस हर्षानुभूति का साझा करना चाहती हूँ कि श्रीमाँ की इच्छा को व्यावहारिक रूप देने के प्रयास हेतु 1971 में आरंभ की गई यह पत्रिका (श्री अरविन्द कर्मधारा) अपने पचासवें वर्ष में प्रवेश कर रही है। उल्लेखनीय है कि श्री अरविन्द की जन्म शताब्दी के समय श्रीमाँ ने इच्छा जाहिर की थी कि श्रीअरविन्द की शिक्षा का भारत के कोने-कोने में प्रसार किया जाए ताकि उससे देश का जन-जन परचित हो सके, तदर्थ कई भाषाओं में पत्रिकाएँ निकाली गईं। अंग्रेजी भाषा हेतु पत्रिका का नाम स्वयं श्रीमाँ ने रखा था - *Sriaurobindo's action*, जिसका हिन्दी अनुवाद -श्री अरविन्द कर्मधारा तय हुआ। पत्रिका के आरंभ की कथा पाठक इस अंक में संकलित श्री अरविन्द कर्मधारा लेख में पढ़ सकेंगे। इस दौरान पत्रिका ने कई उतार-चढ़ाव देखे, अंकों की संख्या घटती-बढ़ती रही। संपादन कार्य के कर्त्ता आते-जाते रहे, रूप-रेखा बदलती रही किन्तु इन पाँच दशकों में पत्रिका के मूल में छिपी श्रीअरविन्द की शिक्षा से जन-जन को अवगत कराने की भावना और श्री माँ की प्रेरणा के प्रति ग्रहणशीलता निरंतर बनी रही। इस अंक में प्रयास किया है कुछ ऐसे रचनाकारों की रचनाएँ देने का जो प्रत्यक्ष रूप से श्री अरविन्द और श्रीमाँ तथा उनके जीवन दर्शन से प्रभावित थे। कवि सुमित्रा नंदन पंत (जिनका लेख इस अंक में प्रस्तुत है) की रचनाओं में श्री अरविन्द के जीवन-दर्शन का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है, श्रीमाँ के प्रति श्रद्धा भक्ति दर्शाने वाली भावपूर्ण कविताएँ भी उन्होंने लिखी हैं। इस अंक में श्री अमल किरण का संस्मरण तथा नलिनीकांत गुप्त का लेख प्रस्तुत है। इन दोनों को ही श्रीअरविन्द और श्रीमाँ की विशेष निकटता एवं कृपा प्राप्त थी।

इन्हीं भावों के साथ वर्ष 2020 का प्रथम अंक आपके लिए प्रस्तुत है। साथ ही अनुरोध है कि हमें विज्ञ पाठकों से पत्रिका-योग्य विषय-सामग्री के संगठन में मौलिक रचनाओं (कविता-लेख, कथा साहित्य) अनुभूतियाँ अथवा संस्मरणों की प्रतीक्षा है।

पत्रिका आरंभ करने के मूल में श्रीमाँ की इच्छा एवं प्रेरणा है, तथा उद्देश्य श्रीअरविन्द और श्रीमाँ के ज्ञान का प्रकाश देश के कोने-कोने में पहुँचाना है। इस कार्य में हम सबको एकजुट होकर प्रयास करना है, आप सभी के सहयोग की हमें अपेक्षा है। पत्रिका आपके पास आ रही है। आपके सुझावों का स्वागत है...।

शुभेच्छा-

नववर्ष के आगमन की प्रार्थना

-श्रीमाँ

हे समस्त वरदानों के परमदाता प्रभु ।
 तुम ही इस जीवन को सार्थकता करते हो प्रदान,
 बनाते हो इसे पवित्र, शुभ एवं महान ।
 तुम ही हमारी नियति के स्वामी हो.
 और हमारी अभीप्सा के एकमेव लक्ष्य हो ।
 तुम्हें समर्पित है इस नववर्ष का प्रथम मुहूर्त ।
 प्रभु! कृपा करो कि इस समर्पण द्वारा
 गौरवान्वित हो उठे यह सकल वर्ष
 जो लोग तुम्हारी अभीप्सा करते हैं, वे तुम्हें ढूँढ लें,
 और वे सब जो दुःख झेलते हैं, नहीं जानते इसका निराकरण
 वे अनुभव कर सकें कि उनकी तमोग्रस्त चेतना की कठोरता को
 प्रतिपल तोड़ रहा है तुम्हारा प्रकाश ।
 हे नाथ! मैं महान कृतज्ञता एवं असीम भक्ति-भावना से
 नतमस्तक हूँ तुम्हारी कल्याणी ज्योति के समक्ष,
 और समस्त पृथ्वी की ओर से मैं करती हूँ तुमसे नम्र निवेदन
 कि तुम अपने प्रेम एवं प्रकाश की पूर्ण बहुलता के साथ,
 स्वयं को करो अधिकाधिक प्रकट एवं अभिव्यक्त ।
 तुम ही हमारे विचारों एवं भावनाओं के स्वामी बनो ।
 तुम ही सर्वस्व बनो हमारे सभी कर्मों एवं कार्यों के
 क्योंकि तुम ही हो हमारी वास्तविकता के सच्चे स्वरूप ।
 तुमसे रहित यह जीवन असत्य एवं असहाय है,
 तुमसे रहित सब कुछ दुःखमय अन्धकार है, भ्रमजाल है ।
 तुमसे ही जीवन है, उल्लास है, एवं प्रकाश है
 तुमसे ही पृथ्वी पर शान्ति का वास है ।

ध्यान और प्रार्थना

-1 जनवरी 1914

श्री अरविन्द कर्मधारा- आरंभ

"Sri Aurobindo's action"

महान सुकरात समुद्र तट पर टहल रहे थे। उनकी नजर तट पर खड़े एक रोते बच्चे पर पड़ी। वो उसके पास गए और प्यार से बच्चे के सिर पर हाथ फेरकर पूछा,- तुम क्यों रो रहे हो? लड़के ने कहा, ये जो मेरे हाथ में प्याला है, मैं उसमें इस समुद्र को भरना चाहता हूँ पर यह मेरे प्याले में समाता ही नहीं, बच्चे की बात सुनकर सुकरात विस्माद में चले गये और स्वयं रोने लगे।

अब पूछने की बारी बच्चे की थी। बच्चा कहने लगा आप भी मेरी तरह रोने लगे पर आपका प्याला कहाँ है? सुकरात ने जवाब दिया-बालक तुम छोटे से प्याले में समुद्र भरना चाहते हो, और मैं अपनी छोटी सी बुद्धि में सारे संसार का ज्ञान भरना चाहता हूँ। आज तुमने सिखा दिया कि समुद्र प्याले में नहीं समा सकता है, मैं व्यर्थ ही बेचैन रहा।

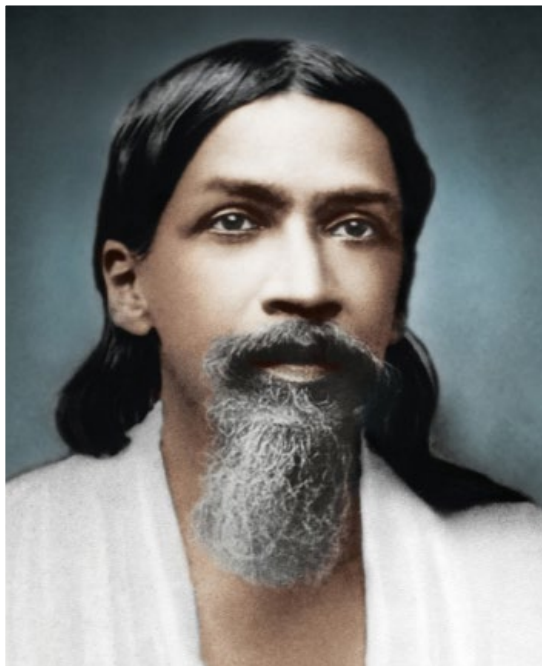
यह सुनकर बच्चे ने प्याले को दूर समुद्र में फेंक दिया और बोला- सागर! अगर तू मेरे प्याले में नहीं समा सकता तो मेरा प्याला तो तुम्हारे अन्दर समा सकता है।

इतना सुनना था कि सुकरात बच्चे के पैरों में गिर पड़े और बोले- बहुत कीमती सूत्र हाथ लगा है। हे परमात्मा ! आप सारा का सारा मुझमें नहीं समा सकते हैं पर मैं तो सारा का सारा आप में लीन हो सकता हूँ।

सुकरात की यह अनुभूति कहीं अन्दर तक छूती चली गई। सुकरात और बच्चे की उपरोक्त बातचीत में रोते हुए बच्चे की दो प्रतिक्रियाएँ मानव जीवन में कितनी प्रासंगिक बन पड़ती हैं। उसका अपनी महत्वाकांक्षा के प्रयास की निष्फलता पर रोना एक सामान्य प्रतिक्रिया थी और इसी असफलता से सीख लेते हुए प्याले को समुद्र में समाहित कर देना अर्थात समर्पण का सूत्र पा जाना, प्रगति की सीढ़ी पा लेना है। श्री अरविन्द के अनुसार यह समर्पण ही योग पथ का पहला और अंतिम शब्द है। कहना ना होगा कि श्री अरविन्द की ज्ञान रश्मियाँ हम तक और हमारे द्वारा दूसरों तक पहुँचे, यही तो इस पत्रिका का मूल उद्देश्य है !

साथियों ! पत्रिका का यह अंक हमें उसके आरंभ का स्मरण कराता है, आज 'श्री अरविन्द कर्मधारा' अपने 50 वें वर्ष में कदम रख रही है। सहज ही उसके विगत पाँच दशकों के इतिहास पर नजर डालने की जिज्ञासा उठी। सन 1971 तक दृष्टि दौड़ाई, सौभाग्य से इस पत्रिका के तत्कालीन संपादक श्री द्वारिका प्रसाद गुप्ता जी से संपर्क भी हो गया।

सोचा अपने पाठक बंधुओं को उन्हीं की जबानी श्री अरविन्द कर्मधारा की रवानी की कथा



सुनाती चलूँ।

1971 की बात है - श्री अरविन्द की जन्म शताब्दी का समय था, श्री माँ ने कुछ लोगों (उदार दा, छोटे नारायण शर्मा, किरीट जोशी...) को बुलाया और कहा, श्री अरविन्द की जन्म शताब्दी पर मैं चाहती हूँ कि श्री अरविन्द के संदेश भारत के कोने-कोने तक पहुँचे।

इसके लिए जो भी कर सकते हो, तुम लोगों को करना चाहिए। सब जगह जाओ, लोगों से मिलो, उन्हें बताओ, पत्र-पत्रिकाएँ निकालो। हर भाषा में निकालो, ताकि जन-जन तक इन्हें पहुँचाया जा सके। श्रीमाँ ने स्वयं अंग्रेजी पत्रिका

के लिए नाम भी निर्धारित कर दिया-**Sri Aurobindo's Action** (श्रीमाँ का हस्त लेख) उन्होंने पॉण्डीचेरी आश्रम के सदस्य जगन्नाथ विद्यालंकार को बुलाया और कहा, तुम्हें इस नाम **Sri Aurobindo's Action** का सटीक अनुवाद हिन्दी में करना है। श्री जगन्नाथ तुरन्त इस कार्य में लग गए। कई विकल्पों में से श्रीमाँ ने **श्री अरविन्द कर्मधारा** को चुना। एक प्रकार का आन्दोलन सा चल पड़ा। इसके बाद गुप्ता जी ने बताया कि उदार दा (पॉण्डीचेरी आश्रम के एक साधक) किसी कार्य से दिल्ली आए, गुप्ता जी से मिले जो उन दिनों दिल्ली आश्रम में चाचाजी के साथ उनके मैनेजर (श्री माँ द्वारा नियुक्त) की हैसियत से कार्य कर रहे थे और हिन्दी भी पढ़ाया करते थे। उदार दा ने उन्हें श्रीमाँ की इच्छा बताई और पूछा कि क्या वे पत्रिका निकालेंगे? गुप्ता जी ने कहा कि यदि श्रीमाँ उन्हें आज्ञा देंगी तो वे अवश्य करेंगे यह काम।

उदार दा ने कहा अपनी एक तस्वीर (फोटो) दो, मैं श्रीमाँ को दिखा कर पूछूंगा कि क्या तुम यह काम कर सकते हो ! उदार दा को फोटो दी गई, वे उसे लेकर पॉण्डीचेरी चले गए। लगभग दो मास के बाद उदार दा पुनः दिल्ली आए और कहा-द्वारिका प्रसाद, श्रीमाँ ने अनुमति दे दी है, तुम पत्रिका निकालो कहते हुए उन्होंने मेरी तस्वीर निकाल कर दी, जिस पर अनुमति स्वरूप श्रीमाँ ने हस्ताक्षर किये थे। गुप्ता जी ने प्रपफुलित होकर वह तस्वीर ली जिसे वे आज तक सम्भाले हुए हैं। वे कहते हैं, मेरा मन फूला नहीं समा रहा था, श्रीमाँ ने मुझे अपने कार्य हेतु यंत्र बनाना स्वीकार किया था, मगर दूसरी तरफ अपनी सीमित क्षमता के कारण उसे व्यावहारिक रूप देने की कठिनाइयाँ भी सामने आ खड़ी हुईं।

पत्रिका के लिए आवश्यक कागज, लेखन-सामग्री, धन की व्यवस्था और सर्वोपरि- चाचा जी की अनुमति

तो ली ही नहीं थी, अब क्या करें। उन्हें कैसे बताएँ, मन में डर और संकोच घर कर बैठे थे।

पर, जो भी हो, अब तो करना ही है, श्रीमाँ का कार्य है। तय किया कि दोपहर के भोजन के पश्चात चाचा जी विश्राम करते हैं, उस दो घंटे में ही जो हो सके करना होगा। लेख लिखने और जुटाने में लग गया। मदर स्कूल के कुछ अध्यापकों से कहा, क्या तुम लोग मुझे 101 रु. दे सकोगे, बिना यह पूछे कि मुझे क्यों चाहिए, विश्वास करो, मैं उन्हें श्रीमाँ के कार्य हेतु प्रयोग करूँगा। जिस आयोजन के पीछे श्रीमाँ हों उसके लिए भला ना कैसे होती ! भोला जी, शेखर जी..., आदि ग्यारह लोगों ने 101 रु. देने की स्वीकृति दे दी। गुप्ता जी कहते हैं - मेरे मन में श्रीमाँ की बात गूँज रही थी कि जिस कार्य में बारह लोग एक जुट हो जाएँ वह पूरा हो कर रहता है, अतः ग्यारह लोगों के साथ मैंने भी आश्रम से मिलने वाले अपने जेब खर्च से 101 रु. की राशि मिलाई, और पत्रिका के काम में जुट गया।

लोगों से लेख लिखवाना, कागज लाना, प्रेस वालों से संपर्क करना, आदि कार्य चुपचाप होता गया, समय वही अपराह्न के दो घण्टे। मन में एक ही ग्लानि थी कि अब भी चाचा जी को कुछ नहीं कह पा रहा था। पर काम चलता रहा..., और वह दिन भी आ गया, जब पत्रिका छप कर आ गई।

मैं उसे लेकर गया और चाचा जी के सामने रख दिया। उन्हें सारा वृत्तांत बताते हुए कहा, अब यदि आप अनुमति दें तो यह पत्रिका जारी रहेगी अन्यथा यही पहला और अंतिम अंक है। चाचा जी ने यह सब सुना, पत्रिका को देखा, पर जरा भी नाराजगी न दिखाई, बल्कि खुशी जाहिर करते हुए मुझे शाबाशी दी, और पूछा, कैसे किया यह सब ! कब किया? और पैसे का कहाँ से प्रबन्ध किया? मैंने उन्हें सब कुछ बताया। कुछ देर बाद चाचा जी से मैंने कहा, यदि इसे जारी रखना है तो सरकारी नियमानुसार आपकी तरफ से एक घोषणा-पत्र (Declaration form) भरना होगा। उन्होंने अनुमति दे दी, सारी औपचारिकताएँ पूरी की गई और बस श्री अरविन्द कर्मधारा- चल पड़ी।

पत्रिका के आरंभ के मूल में श्रीमाँ की इच्छा एवं प्रेरणा है, उद्देश्य, श्री अरविन्द और श्रीमाँ के ज्ञान का प्रकाश देश के कोने-कोने में पहुँचाना है, जिसमें हम सबको एक जुट होकर प्रयास करना है, आप सब के सहयोग की हमें अपेक्षा है। पत्रिका आपके पास आ रही है। आपके सुझावों का स्वागत है...।

-श्री द्वारिका प्रसाद से प्राप्त विवरण



श्री अनिल जौहर-एक प्रेरणा

श्री अनिल जौहर श्री अरविन्द-आश्रम के भूतपूर्व चेयरमेन थे। उन्होंने आश्रम संचालन के समस्त उत्तर दायित्वो का निर्वाह करते हुए अपने पिता एवं श्री अरविन्द आश्रम के संस्थापक श्री सुरेन्द्र नाथ जौहर के कार्य को सफलता पूर्वक आगे बढ़ाया। 20 जनवरी 1930 को जन्मे श्री अनिल जौहर ने आश्रम संचालक के रूप में श्रीमाँ के प्रति समर्पित यत्न स्वरूप जीवन पर्यन्त इस कार्य का निर्वाह किया और इसी समर्पण के साथ 28 फरवरी 1914 को श्रीमाँ के इस आदर्श बालक ने पार्थिव जीवन से आँखे मूँद लीं।



श्री अनिल जौहर

20.01.1930--28.02.2014

सरलता, संयम, उदारता, कर्तव्यनिष्ठा, मितभाषिता, मृदुभाषिता, स्मित मुस्कान और सर्वोपरि श्री माँ के प्रति पूर्ण समर्पण श्री अनिल जौहर जी के व्यक्तित्व को विशेष गरिमा प्रदान करने वाले गुण थे। अनिल जी आश्रम के हर सदस्य ही नहीं बल्कि मानव मात्र के लिए प्रेरणा स्रोत थे।

किसी भी विषम परिस्थिति में धैर्य खोये बिना समस्याओं का समाधान खोज लेना उनकी सहज विशेषता थी, फिर चाहे वह कार्यालय प्रशासन, आश्रम – व्यवस्था, सामाजिक या व्यक्तिगत उलझनें ही क्यों न हों। उनके जीवन का सूत्र ही था – कोई समस्या नहीं, केवल सामाधान (No Problems, only Solutions) श्रीमाँ की उनपर विशेष कृपा थी, यह उनके जीवन की उपलब्धियाँ प्रमाणित करती हैं।

जीवन की सादगी और निर्लिप्तता के प्रति उनकी विचारधारा बिलकुल स्पष्ट थी। सम दृष्टि और सम भाव उनके जीवन के व्यावहारिक आदर्श थे। विचारों की स्पष्टता उनके इस कथन में जाहिर होती है—किसी ने उनसे कहा था कि व्यक्ति की निर्धनता जब जीवन में बाधा उपस्थित करे तो उसे क्या करना चाहिए? उन्होंने छोटा सा उत्तर दिया—हमें अपनी जरूरत और इच्छाओं के बीच अन्तर करना आना चाहिए, यदि किसी के पास सौ रुपये हैं और उसकी जरूरत केवल पचास साठ रुपये हो तो वह धनी है और यदि उसकी जरूरत इच्छाओं के वशीभूत एक सौ पचास रुपये तक पहुँच जाए तो जाहिर है वह स्वयं को निर्धन महसूस करेगा। उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा, सामान्यतः हमारी जरूरतें इतनी नहीं होतीं, मुश्किलें तो हमारी इच्छाएँ खड़ी करती हैं जिनका कोई अन्त नहीं होता।

ईश्वर के प्रति उनका अटल विश्वास था। आदरणीय चाचा जी का श्रीमाँ के प्रति समर्पण भाव उन्हें विरासत में मिला था, जो हम सब के लिए अनुकरणीय है।

अनिल जी! आपकी स्मृति हमारे हृदय में एक मार्गदर्शक के रूप में विद्यमान है और हमेशा रहेगी ...।



साधना का अर्थ है योगाभ्यास। तपस्या का अर्थ है साधना का फल पाने तथा निम्न प्रकृति को जीतने के लिये संकल्पशक्ति को एकाग्र करना। आराधना का तात्पर्य है भगवान की पूजा करना, उन्हें प्रेम करना, आत्मसमर्पण करना, उनको पाने की अभीप्सा करना, उनका नाम जपना, उनसे प्रार्थना करना। ध्यान है चेतना का भीतर में केन्द्रीभूत हो जाना, मनन-चिन्तन करना, अन्दर समाधि में चला जाना। ध्यान, तपस्या और आराधना ये सभी साधना के अंग हैं।

श्री अरविन्द



नव जन्म

- त्रियुगी नरायण

श्री अरविन्द का कथन है कि जो व्यक्ति भगवान का चुनाव करता है वह व्यक्ति पहले से ही भगवान द्वारा चुना हुआ होता है। भगवान ही वास्तव में जीवन को उसका असली मूल्य प्रदान करते हैं, जिसके अभाव में हम भगवान की ओर उन्मुख होते हैं। इस विषय में एक कहानी मनन करने योग्य है:-

एक गृहस्थ का घर और चलती हुई जिंदगी। तभी किसी साधु ने द्वार पर दस्तक दी:

‘भिक्षां देहि ! भिक्षां देहि ! भगवान तुम्हारा कल्याण करें ।’

तत्क्षण, आवाज सुनते ही घर की बहु भिक्षा लेकर बाहर निकली। बहु ने साधु को प्राणाम किया, फिर भिक्षा उनके पात्र में डाल दी।

साधु उसके शील और व्यवहार को देखकर प्रभावित हुए और पूछा

‘भद्रे ! तुम्हारी जय हो, कल्याण हो, सौभाग्यवती होओ। पुत्री! तुम मुझे यह तो बताओ कि इस समय तुम्हारी उम्र कितनी है?’

बहु ने उत्तर दिया ‘-20 वर्ष महाराज।’

‘और तुम्हारे पति की?’

‘14 वर्ष’

तब तक उसकी सास भी वहां पहुँच चुकी थी। अपनी बहु की इस तरह अनर्गल बातें सुनकर सास की तयोरियां चढ़ गईं वे क्रोध से आग बबूला हो उठी, तभी महाराज ने बहु से तीसरा प्रश्न किया-

‘और तुम्हरी सास की उम्र?’

‘10 वर्ष’

अब तो सास का धैर्य समाप्त हो गया उसके क्रोध का पारा सातवें आसमान पर पहुँच गया और वे गाली-गलौज तथा हाथापाई पर उतर आईं।

इस पर महात्मा जी ने बीच बचाव किया और समझाया कि माता जी आप क्रोध न करें, पहले उसकी पूरी बात तो सुन लें।

तदुपरांत साधु ने बहु से चौथा प्रश्न किया - ‘तुम्हारे श्वसुर की उम्र क्या है?’

इस पर बहु ने उत्तर दिया - ‘वे तो अभी पैदा ही नहीं हुए।’

बहु की ऐसी अटपटी बातें सुनकर साधु को भारी आश्चर्य हुआ, वे चकित रह गए और कहा - ‘भद्रे! तुम्हारी बातें बहुत ही रहस्यपूर्ण हैं। क्या अपनी इस पहेली का खुलासा करोगी?’

इस पर बहु ने रहस्य का खुलासा किया और बताया-महात्मन् ! जब मैं मात्र 14 वर्ष की एक

बालिका थी तभी हमारे गाँव में एक योगी का आगमन हुआ । यद्यपि उस समय साधु-संत अथवा धर्म-कर्म में मेरी कोई रुचि नहीं थी, मैं इन्हें खाली ढोंग, पाखंड और अंधविश्वास ही समझती थी, लेकिन अपनी सखी-सहेलियों के आग्रहवश उनके साथ मैं वहां चली ही गई, जहां योगी जी का प्रवचन था । फिर क्या था योगी जी के प्रवचन से हमारे जीवन की एक-एक परत खुलने लगी, जैसे हम अपनी घोर निद्रा से जाग उठे हों और हमें इस बात का ज्ञान हुआ कि हम कौन हैं । इस संसार में आने का हमारा प्रयोजन और कर्तव्य क्या है ?

और यह सब जानकर संसार के भौतिक जीवन से हमारा मोह भंग हुआ तथा मैं अपनी अन्तरात्मा व दिव्य जीवन के प्रति सचेत हुई । हे महात्मन! इसे ही मैं अपना असली जन्म समझती हूँ । वैसे तो गिनती के लिए इस समय मैं 34 वर्ष की हूँ लेकिन सच पूछिये तो मेरा असली भागवत जीवन मात्र 20 ही वर्ष का है । शेष जीवन तो मैंने यों ही गँवा दिया । आगे और सुनिये:-

20 वर्ष की उम्र में मेरा विवाह हुआ और मैं अपनी ससुराल आई, तभी से मेरे इस भागवत जीवन का प्रभाव मेरे पतिदेव पर भी पड़ा तब से हम दोनों एक ही दिव्य पथ के पथिक हैं ।

मेरे इस विवाह काल के अब 14 वर्ष पूरे होने को हैं अतः मैंने अपने पतिदेव की उम्र 14 वर्ष बताई है जो उनके नए दिव्य जीवन की उम्र है ।

हमारे विवाह के पश्चात् कालांतर में हम दोनों का प्रभाव मेरी सास माँ पर भी पड़ना शुरू हुआ इसलिए मैंने उनकी उम्र मात्र 10 वर्ष की बताई है ।

लेकिन बेचारे हमारे ससुर जी ! उन्हें तो अपनी कमाई और धंधे से फुरसत ही नहीं , रात-दिन अपने गृह कारज, नाना जंजालों में इस तरह डूबे हैं कि वे कभी अपने असली जीवन के बारे में सोच ही नहीं सकते, इसीलिए मैं कहती हूँ कि अभी तो वह पैदा ही नहीं हुए ।’

आज हम सबकी स्थिति “श्वसुर” जैसी ही है । हम सब इतने जरूरी कामों में व्यस्त हैं कि किसी को भगवान के लिए फुरसत ही नहीं । बेतहाशा सबकी दौड़-धूप जारी है । लेकिन कहां जाना है इस बात का किसी को पता ही नहीं । हमारे जीवन का उद्देश्य कहीं खो गया है और हम सब असली रत्न छोड़कर खाली कंकड़-पत्थर बटोरने में लगे हैं ।

वैसे देखा जाए तो आज के वर्तमान युग में पूजा-पाठ करने वालों की कमी भी नहीं, पूरी दुनिया आज मंदिर, मस्जिद और देवालयों से भरी पड़ी है । लेकिन प्रश्न उठता है कि फिर दुनिया में इतना झूठ और बेईमानी क्यों है? अवश्य ही दाल में कुछ काला है । हममें खोट है और हम सच्चे नहीं हैं । हमारी यह सारी पूजा अर्चना भगवान और सत्य के लिए नहीं, बल्कि अपनी लोभ-लालसा और मान मनौती की पूर्ति और पाप धोने के लिए है । अपने कारोबार में लाभ और अपनी मनचाही वस्तु की प्राप्ति के लिए है । भगवान तुम मुझे अमुक धंधे में एक लाख का मुनाफ़ा करा दो, मैं तुम्हारे लिए सौ रुपये का भोग

चढ़ाऊंगा। वाह! कितना बढ़िया सौदा है यह! मानो भगवान हमारा नौकर हो। हम जब जो चाहें वह उसे पूरा करता जाए बस और यदि अपनी इच्छा पूरी नहीं हुई तो बस ईश्वर पर अपनी आस्था समाप्त, भगवान नाम की कोई चीज़ इस दुनिया में है ही नहीं। तो यह है हमारी आज की मनःस्थिति।

लेकिन स्पष्ट है कि यह सब श्री अरविन्द योग में नहीं चलेगा। श्रीमाताजी पूछती हैं कि 'तुम योग साधना किस लिए करना चाहते हो क्या तुम भगवान के लिए साधना करना चाहते हो? क्या भगवान ही तुम्हारे जीवन के परम सत्य हैं, यहां तक कि तुम उनके बिना रह ही नहीं सकते? क्या तुम यह अनुभव करते हो कि तुम्हारे जीवन का एकमात्र उद्देश्य भगवान ही हैं और उनके बिना तुम्हारे जीवन का कोई अर्थ नहीं है? यदि ऐसा है, तभी कहा जा सकता है कि तुम्हारे अंदर इस योग मार्ग के लिए पुकार है।'।

और यह पुकार सचमुच में अपनी आत्मा का जागरण है, हम पर भगवान की महान कृपा है। हमने इसलिए उनकी चाह और चुनाव किया क्योंकि उन्होंने पहले से ही हमारा चुनाव कर लिया है और हमारा यह आत्मजागरण उन्हीं की कृपा का फल है। अस्तु हम इस भागवत मुहूर्त को खोयें नहीं, उसका प्रतिक्षण सदुपयोग करें और हानि-लाभ का हिसाब करने में इस अमूल्य समय को नष्ट न करें।

श्री अरविन्द और श्रीमाताजी ने अपने पूर्ण योग का केवल ज्ञान ही नहीं दिया है बल्कि स्वयं उस पथ पर चलकर तथा जीवन को विकसित कर हमारे सामने अपना एक जीवंत आदर्श भी प्रस्तुत किया है। श्रीअरविन्द आश्रम पांडिचेरी उनके योग की एक अनुपम प्रयोगशाला है, जहां दुनिया के विभिन्न कोनों से विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले- बड़े दार्शनिक, मनीषी, साहित्यकार, कलाकार, वैज्ञानिक, उद्योगपति, क्रांतिकारी देशभक्त तथा श्रमिक आदि सब तरह के लोग जिज्ञासु के रूप में पांडिचेरी आए और अपने महान गुरु के मार्गदर्शन में रहकर साधना की।

इस तरह एक लघु विश्व के नए सृजन और उसके अभूतपूर्व रूपांतर का कार्य यहाँ से प्रारंभ हुआ तथा साथ ही साथ 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श उदाहण भी परिलक्षित हुआ। आगे चलकर श्रीमाताजी ने ओरोविल या उषानगरी की स्थापना की जो विश्वबंधुत्व एवं मानव एकता की दिशा में उठाया गया अगला चरण है।

साधना का तात्पर्य है, अपने ईष्ट और आदर्श पर अनुशासित होकर उस पर एकाग्र होना और वही बन जाना। श्री अरविन्द का योग भगवान के लिए और स्वयं वही बन जाने के लिए, इस जीवन को दिव्य और सुंदर बनाने के लिए है।

(‘भागवत जीवन’ पुस्तक से)



भागवत् युद्ध (श्री अरविन्द आश्रम-दिल्ली शाखा की स्थापना)

-श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर

जब मैं श्रीअरविन्द आश्रम की दिल्ली शाखा के इतिहास के संबंध में पीछे मुड़कर देखता हूँ तो मैं इस नतीजे पर पहुँचता हूँ कि जो आश्रम इस स्थान पर स्थापित हुआ है वह अवश्य ही किसी ऐसे बहुत लम्बे युद्ध का परिणाम है जो कहीं ऊपर आध्यात्मिक स्तर पर लड़ा जा रहा था ।

इसकी सारी कहानी इतनी मोहक व आकर्षक है जिस पर सहसा विश्वास करना कठिन है । ऐसा लगता है कि यह पुराणों के किन्हीं पृष्ठों से ली गई है, परन्तु है तो एकदम असली और सच्ची । यदि इसका साक्षी मैं स्वयं ही नहीं होता तो इसका विवरण जानने पर मुझे भी ऐसा ही लगता कि यह तो एक ऐसी कहानी है जैसी कहानियों का वर्णन हमारे पुराणों में किया गया है और जिन्हें इस तर्क के युग में मनुष्य कल्पित या मनगढ़ंत समझते हैं ।

ऐसा समझिये कि पहले यहाँ पर आश्रम बनाने का कोई विचार, ख्याल अथवा स्वप्न भी नहीं था । किसी तरह का सुझाव, कोई नक्शा, खाका, ढाँचा और योजना तो कभी थी ही नहीं । फिर भी जब मैं इस भू-सम्पत्ति के बारे में, जो कि अब आश्रम के पास आ गई है, विचार करता हूँ तो इससे बहुत साफ़ जाहिर होता है कि यह भी किसी बड़े और लम्बे अभियान की पराकाष्ठा है जिसकी भगवान् के दरबार में कल्पना हुई, योजना बनी, उसका निश्चय किया गया व निर्णय लिया गया ।

ऐसा प्रतीत होता है कि सब देवताओं ने चाहा कि इस भूमि को इसकी अन्तर्निहित पवित्रता व पुनीतता प्रदान की जाये और यह प्रतिष्ठा की पात्र बने ।

इस भूमि के आस-पास, जहाँ महलों के खण्डहर और भग्नावशेष, किले, मस्जिद और मन्दिर थे, आसुरिक शक्तियों को अवसर मिला और उन्होंने ऐसे वीरान और उजाड़ स्थानों पर अपना कब्जा जमा लिया, परन्तु देवताओं को भी यह स्थान अच्छा लगा और आकर्षण हुआ क्योंकि भगवान ने इस स्थान को अपने युग-परिवर्तनकारी कार्य के लिये पहले से ही नियोजित कर रखा था ।

उन्होंने अपने भविष्य के कार्य की महती योजना के लिए इसे चुन रखा था इसलिये यह स्थान झगड़े का कारण बन गया फलस्वरूप दैवी व आसुरिक शक्तियों के बीच घमासान युद्ध इसी स्थल पर छिड़ गया ।

इस युद्ध के बीच सन् 1939-40 में यह भू-सम्पत्ति खरीद ली गई और आसुरिक शक्तियों ने यह स्पष्ट और साफ़ रूप से देखा कि दैवी शक्तियों ने उनके विरुद्ध अपना एक कदम आगे बढ़ा लिया है । यह देखकर आसुरिक शक्तियों ने दैवी शक्तियों के हरेक चरण पर अपनी विघ्न-बाधाएँ डालनी शुरू कर दीं । तीन बार तो यह भू-खण्ड कुछ कानूनी अड़चनों के कारण हाथ से निकल गया । अब इस स्थान में भवन-निर्माण सम्बन्धी जो कार्य हो चुका था उसे आर्किटेक्ट और इंजीनियरों ने आकर देखा और उन्होंने अपनी राय दी जिससे कि इस भवन का निर्माण-कार्य प्रारम्भ हुआ । इस नये निर्माण में अभी थोड़ी ही प्रगति हुई थी कि सरकार की तरफ से तरह-तरह की नई समस्याएँ (इसकी रूप-रेखा व धन-सम्बन्धी) खड़ी हो गई । काम में देरी पर देरी होने लगी जिसके परिणामस्वरूप मन में निराशा घर करने लगी ।

फिर भी अनेक कठिनाइयों के बावजूद यथासमय भवन के निर्माण का कार्य पूरा हो गया और यह प्रयास चलने लगा कि इस स्थान को सामाजिक, राजनैतिक और अन्त में लोककल्याण के कार्य के लिये प्रयुक्त किया जाये। परन्तु ये धारणाएँ भी व्यर्थ सिद्ध हुई और फिर से ये प्रयत्न प्रारम्भ हुए कि इस भवन तथा इसके साथ लगी हुई जो ज़मीन थी उसमें नर्सिंग-होम, एक बड़ा अस्पताल, कृषि-फार्म, छात्रालय, हवाई -जहाज़ चलाने वालों के लिये एक विश्राम-गृह और अमेरिकी सैनिकों के लिये कुछ लम्बी-लम्बी बैरकें बनाई जाएँ।

चूँकि उन दिनों द्वितीय विश्व-महायुद्ध चल रहा था इसलिये ये सब चीज़ें आवश्यक प्रतीत हुई परन्तु अन्त में ये सब धारणाएँ और योजनाएँ भी विफल हो गई और अब सन् 1947 में पाकिस्तान से आये हुए शरणार्थियों की समस्या आ खड़ी हुई।

यह पश्च उपस्थित हुआ कि लाखों निराश्रित लोगों को रहने का स्थान कहाँ और कैसे दिया जाए? शरणार्थी लोग सारी पुरानी छोटी-मोटी इमारतों के खण्डहरों में, टूटे-फूटे पुराने मकानों, स्थानों और यहाँ तक कि सड़कों के किनारों पर भी टिक गये थे, परन्तु इस भवन में कोई नहीं आया।

इस भूमि में दो सौ फीट गहरा एक ट्यूब-वेल खोदा गया लेकिन जब उसमें नीचे से अच्छे पानी का कोई आसार ही नज़र नहीं आया तब उसे भी छोड़ देना पड़ा। यह ज़मीन इतनी बंजर थी कि कोई फूल-फल, वृक्ष उगाना तो दूर रहा, घास का एक तिनका भी यहाँ मानों सहन नहीं होता था। मनुष्य जाति तो एक तरफ, जानवरों तक को भी यहाँ रखना मुश्किल काम था। फिर भी प्रारम्भ में कुछ गाएँ यहाँ रखी गई। जब ये गाएँ और इनके बछड़े मिलाकर अठारह के करीब हो गये थे, तभी डाकू इन्हें उड़ा ले गये। सब लोगों की वर्षों की सामुहिक मेहनत, प्रयास और आगे की योजनाएँ सब खड्ड में पड़ गई और बेकार हो गई।

इस तरह यह स्थान बहुत साल तक उजड़ा हुआ और वीरान पड़ा रहा। अन्धकार, टूटी-फूटी कब्रों और खण्डहरों से घिरे हुए इस बियाबान स्थान ने एक भयावनी जगह का रूप धारण कर लिया। डरावने जंगली जीव-जन्तुओं के जमाव का यह डेरा बन गया। भ्रष्ट और भयानक प्राणियों के लिये अन्धेरे और वीराने में यह खाने-पीने का मानो एक सैरगाह बन गया। चोर-डाकूओं के छिपने के लिये अड्डा हो गया और बड़े-बड़े चूहों, चमगादड़ और उल्लुओं ने भी इसे अपना बसेरा बना लिया। हर प्रकार के साँपों ने रहने के लिये बिल बना लिये और गीदड़ भी अपनी हुआ-हुआ की बोली से दिन-रात धरती-आकाश गुँजाने लगे। यह सब आसुरिक शक्तियों को तो बहुत अच्छा लगा और उन्होंने सोचा कि चलो अब यह स्थान भगवान के काम के तो योग्य ही नहीं रहा। इस प्रकार यह स्थान आसुरिक शक्तियों का एक सृष्टि गढ़ बनता गया जो भागवत-कार्य के उपर हमला बोलने के लिये हमेशा तत्पर रहती थीं।

इसी समय कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं जो तर्क से समझाई नहीं जा सकतीं। एक ऐसे व्यक्ति, जिनका मेरे साथ 1942 की क्रान्ति - 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के समय जेल में वास्ता पड़ा था परन्तु उसके पश्चात् उनका कुछ पता नहीं चला, एक दिन अचानक मेरे घर सन् 1955 में आ पहुँचे। मैं उस समय 27 ,

औरंगज़ेब रोड पर रहता था। अजीब बात यह थी कि जब मेरी जान-पहचान इन सज्जन से पहले जेल में हुई थी तो पुलिस यह कभी पता नहीं लगा पाई कि वह हैं कौन? क्या उनका नाम है तथा उनके बाप का क्या नाम है और क्या उनका पता है? इस कारण पुलिस कभी उनके विरुद्ध कोई मुकद्दमा भी ना बना सकी। बातचीत करने और देखने से तो वह बिल्कुल सनकी, झंझकी और खब्ती मालूम होते थे। कहने लगे, “मैं भगवान का दूत हूँ।” मैंने उनका अता-पता जानने की बहुत कोशिश की परन्तु कभी कुछ पता नहीं लगा। एक दिन वे कहने लगे, “मैं इस समय एक विशेष लक्ष्य को लेकर आया हूँ और वह यह है कि आपका जो एक भवन कुतुब के रास्ते में है और जिसमें आसुरिक शक्तियों ने अपना डेरा जमाया हुआ है और अपना कब्जा किया हुआ है उस भवन में से मुझे उन आसुरिक शक्तियों को निकाल बाहर करना है।” मैं उनकी बातों को सुनकर बड़ा हैरान हुआ। परन्तु वे शरूब तो शाम को अपने लक्ष्य पर चले ही गये। मैं तो यह कभी सोच भी नहीं सकता था, ना आशा करता था और ना ही मान सकता था।

दूसरे दिन प्रातः वे मेरे घर पर आ पहुँचे। उनका हाल बुरा था। फटे हुए कपड़े, सिर के बाल और दाढ़ी ऐसी बिखरी हुई जैसे कि बुरी तरह से पिटे हुए हों। आते ही कहने लगे-

“आसुरिक शक्तियों की ताकत बहुत अधिक थी, जिसका मुझे अन्दाज़ा भी नहीं था। इस कारण भयंकर युद्ध करना पड़ा। परन्तु मैं उन्हें मारकर छोड़ूँगा। हाँ! उनको जरूर हराकर छोड़ूँगा, ऐसा निश्चयपूर्वक कहते हुए वे चले गये।

अगले दिन प्रातः जब वे फिर मेरे घर आये तो इस बार उनकी हालत इतनी अधिक खराब थी -इतनी खस्ता थी और हाल इतना बेहाल था कि वे बिल्कुल टूटे हुए, चूर-चूर व क्षत्-विक्षत् अवस्था में थे।

लेकिन उनकी आँखों में थी विजय की एक चमक और वे उसी अद्भुत चमक से जगमगा रही थीं। भाव-भरे स्वर में वे बोले-

“आसुरिक शक्तियों ने डटकर मुकाबला किया और आखिरी दम तक हमारी घमासान लड़ाई चलती रही, परन्तु अब उनका समय खत्म हो चुका है और मैंने उन्हें पूरी तरह से निकाल बाहर फेंका है। अब यह भवन हमेशा के लिये भगवान के अवतरण के लिये खाली है”।

अगली बार जब मैं पांडिचेरी आश्रम पहुँचा तो मैंने श्रीमाँ से प्रार्थना की कि आश्रम उद्घाटन के लिये कोई तिथि निश्चित कर दें। श्रीमाँ ने तुरन्त 12 फरवरी 1956 का दिन निश्चित कर दिया। मैंने कहा-

“श्रीमाँ 21 फरवरी क्यों नहीं, जो कि बहुत महत्वपूर्ण है और आपका पवित्र जन्मदिन है।”

श्रीमाँ ने कहा, “12 और 21 एक ही बात है, इसमें कोई अन्तर नहीं है।” श्रीमाँ ने आगे कहा, “बारह लोग उस दिन ध्यान में बैठ सकते हैं। एक पुराना विश्वास है कि यदि बारह लोग इकट्ठे होकर प्रार्थना करें तो वह प्रार्थना मंजूर होती है।

तो इस प्रकार दिल्ली आश्रम की प्रतिस्थापना हुई।

ज्यों ही यह रहस्यमयी विजय प्राप्त हुई कि दिल्ली पुलिस वालों का टेलीफोन आया कि वह हमारे भवन के चारों तरफ के क्षेत्र की पूरी छानबीन करना चाहते हैं और इस भवन में अपना शिविर गाड़ना चाहते हैं। मैंने हाँ कर दी और उसी समय पुलिस का एक दल बन्दूक और संगीनों से लैस होकर भवन की दूसरी मंजिल में आकर जम गया। इससे भगवान के दूत ने जो संग्राम किया था और आसुरिक शक्तियों को निकालने के लिये हमला किया था उसकी पुष्टि हो गई। यह सब क्यों हुआ और कैसे हुआ इसके लिये तो मैं खुद हैरान हूँ परन्तु कुछ समय पश्चात् मैं यह सोचने लगा कि इस स्थान का कुछ उपयोग होना चाहिये।

अंत में एक ऐसा क्षण भी आ गया जबकि इस स्थान पर रूपान्तर करने का काम भी हाथ में ले लिया गया। बहुत ही जल्दी मरम्मत का काम शुरू किया गया, सारे भवन की सफाई की गई और सुन्दर पुताई हुई। इसके बाद ध्यान में कुछ ऐसे विचार बने कि इसके साथ कुछ नई इमारतें भी खड़ी की जायें।

अब काम चल पड़ा। मुझे हिम्मत हुई कि इस स्थान में खेलने के लिये बड़े-बड़े मैदान, विद्यालय और छात्रावास इत्यादि बनाए जाएँ। मैंने श्रीमाँ को लिखा। इन सब योजनाओं में जो कि श्रीमाँ को मैं भेज रहा था उसमें सबसे ऊपर मेरे मन में एक ऐसा विचार आता था कि यहाँ पर श्रीअरविन्द की कोई यादगार बननी चाहिये परन्तु उसका कोई आकार मैं नहीं बना पा रहा था। श्रीमाँ की तरफ से मेरे सुझावों पर कभी कोई उत्तर नहीं मिला।

अन्त में एक ऐसा ऐतिहासिक दिवस भी आया जबकि मैंने श्रीमाँ से पूछा-

“ श्रीमाँ, दिल्ली के स्थान के सम्बन्ध में मैं समय-समय पर अपने सुझाव भेजता रहा हूँ और कुछ न कुछ कहता भी रहा हूँ परन्तु मुझे कभी आपका कोई मार्गदर्शन और निर्देश प्राप्त नहीं हुआ।”

अब श्रीमाँ ने कुछ ऐसे सहज भाव से कहा जिसका गहरा प्रभाव मेरे मानस-पटल पर जन्म-जन्मान्तर पर्यन्त छाया रहेगा। श्रीमाँ ने कहा, “लेकिन क्यों ! यह स्थान तो श्री अरविन्द आश्रम होगा और अवश्य ही इस स्थान पर श्री अरविन्द की समाधि बनेगी जिसके लिये मैंने श्री अरविन्द के अमूल्य व कीमती अवशेष भी सँभालकर रखे हुए हैं”।

साफ़ जाहिर है कि आसुरिक शक्तियों के निकल जाने के पश्चात् और इस स्थान को खाली कर देने के बाद दैवी शक्तियों ने श्रीमाँ के ऊपर भी अपना प्रार्थना-प्रभाव डाला होगा कि वे इस स्थान को मुक्त व पवित्र करें, क्योंकि भगवान की यही इच्छा है और इस इच्छा को पूरा करने के लिये इतने लम्बे समय तक इतना भीषण युद्ध करना पड़ा है।

श्रीमाँ का यह गहरा और महत्वपूर्ण निश्चय सुनकर मैं काफ़ी समय तक अचंचित और अभिभूत रहा। मन की इसी अद्भुत अवस्था में मैं दिल्ली लौट आया। वाह ! क्या खुशी और हैरानगी की

बात हुई कि जिस दिन मैं दिल्ली पहुँचा उसी दिन एक रजिस्ट्री - पैकेट पांडिचेरी से प्राप्त हुआ। मैंने पैकेट खोलकर देखा कि श्रीअरविन्द की समाधि के निर्माण के लिये पूरे रेखाचित्र, आदेश और निर्देश सब विधिवत् दिये हुए थे।

अब मैं इस अदभुत घटना के ऊपर कह ही क्या सकता हूँ। भला अब मेरे रास्ते में कौन-सी रुकावट थी! समाधि का पूरा रेखाचित्र मिल गया था। मेरी पुकार सुन ली गई थी और स्वीकृति दे दी गई थी। अब तो कुछ ऐसा होना प्रारम्भ हुआ जो कि इसके पहले कभी संभव नहीं हो रहा था।

बीस साल की व्यर्थ कोशिश और निष्फल प्रयास अब जादू की छड़ी के छूने की तरह ठीक होने लगे। उस समय दिल्ली में बिजली की बहुत कमी थी और इस स्थान के पाँच-सात मील के अन्दर ना कहीं खम्बे थे और ना कोई बिजली की लाइन परन्तु अब खास तौर पर वे हमारे लिये लगाए गये जिससे कि पम्प लगाकर कुँओं से पानी निकालना भी शुरू हुआ। ऐसे कुँए जो सैकड़ों वर्षों से वीरान पड़े हुए थे, और वे खेत जो कि वर्षों से उजाड़ खाली पड़े हुए थे-उन्हें अब इधर-उधर के लोग किराए पर लेने लगे और घास, खेती तथा सब्ज़ी लगनी शुरू हो गई जिससे आश्रम के लिये कुछ आमदनी भी शुरू हुई।

चारों ओर से हर प्रकार की ऐसी मदद आनी शुरू हो गई जिसका कभी स्वप्न में भी ख्याल नहीं हो सकता था। हर एक कठिनाई और उलझन के लिये स्वतः ऐसी शक्तियाँ आ उपस्थित होने लगीं जिन्होंने खुशी और स्वेच्छा से सहायता देना प्रारम्भ कर दिया। एक उद्यान-विशेषज्ञ अपने-आप आए और उन्होंने बाग-बगीचे व वृक्ष लगाने और लॉन बनाने में मदद देनी शुरू कर दी। एक -दो आर्किटेक्ट और इंजीनियर भी आ गये जिन्होंने निर्माण-कार्य में अपना मूल्यवान समय देकर समय आने पर श्रीअरविन्द की संगमरमर की समाधि बनाने में अपना योगदान दिया।

एक अन्य सैनिटरी-इंजीनियर ने आकर पाइप-लाइन डालने की समस्या को हल कर दिया।

इस तरह बीसों लोग चारों ओर से छोटे-बड़े मुश्किल कामों और समस्याओं को हल करने के लिये व हाथ देने के लिये आ जुटे जिनका आश्रम से या मुझसे कोई सम्बन्ध ना था।

अब तो ऐसी बात हो गई कि जो सब मुश्किलें और उलझनें पड़ी रहती थीं और जिनका कोई हल नहीं मिलता था व कोई बात आगे चल नहीं पाती थी अब वही सब बातें सीधी व सरलता से हल होने लगीं, सब काम सफल होने लगे। इस तरह थोड़े ही महीनों के भीतर विद्यालय की स्थापना हो गई। 23 अप्रैल, 1956 को जब आश्रम के विद्यालय की स्थापना की गई, वहाँ कुछ भी ना था। ना कोई विद्यार्थी, ना ही कोई अध्यापक। कोई साज़ो-सामान भी नहीं। यहाँ तक कि कोई योजना भी नहीं कि किस स्थान पर विद्यालय की कक्षाएँ होंगीं, तो भी 23 अप्रैल 1957 को एक वर्ष के भीतर ही यह स्कूल दिल्ली के शिक्षा क्षेत्र में अपना एक विशिष्ट स्थान बना चुका था। दो सौ के लगभग उसमें छात्र थे और बीस से

अधिक अध्यापक काम कर रहे थे।

श्री अरविन्द के पवित्र देहावशेषों की आश्रम-समाधि में स्थापना करके भागवत अनुष्ठान स्वरूप दीर्घकाल से चले आ रहे देवासुर संग्राम में दैवी शक्तियों की विजय और आसुरी शक्तियों के सम्पूर्ण विघटन व विनाश के लिये श्रीमाँ ने अपनी निर्णायक मुहर लगा दी व इस क्षेत्र को आसुरी प्रभाव से विमुक्त कर विजय-मंडल की सच्ची महिमा से मण्डित कर दिया। ऐसा लगता था कि यही भागवत प्रक्रिया की चरम परिणति थी और भारत की राजधानी में नवीन युग के उद्घाटन के प्रथम चरण की सम्पूर्ति, जिसके प्रादुर्भाव के हित देवताओं ने इतने दीर्घकाल तक संघर्ष किया व जिसमें साधकों का प्रयोग उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र व आयुधों के रूप में किया।

यह कोई मात्र आकस्मिक घटना नहीं है बल्कि जीवन्त निरूपण है जिसमें श्रीमाँ का ऐतिहासिक संदेश सत्य स्पष्ट परिलक्षित होता है -

‘अतिमानस का अवतरण हो चुका है, आसुरी शक्तियाँ पछाड़ी जा चुकी हैं। वे पीछे हट रही हैं। मानवता का अतिमानस युग में प्रवेश हो गया है।’

(‘मेरी माँ’ पुस्तक से)



हम श्री अरविन्द के शब्दों में देव 'मुहूर्त' में जी रहे हैं और
सारे संसार के रूपांतरकारी विकास ने एक तेज और तीव्र गति
अपना ली है।

भावी दिव्य चेतना

-सुमितानंदन पंत

श्री अरविन्द ने अपना योग वहाँ से आरम्भ किया जहाँ से भारत के अन्य योगी (प्राचीन और अर्वाचीन) उसे समाप्त समझते हैं। जगत-जीवन को माया या मिथ्या मानकर व्यक्ति से परात्पर की ओर जाना, अथवा आत्मसाक्षात् कर व्यक्तिगत मुक्ति अर्जित करना ही प्राचीन योग ने अपना ध्येय माना। आत्म-साक्षात्कार कर लेने के बाद श्री अरविन्द का ध्यान प्रथम बार भगवान के विश्वरूप को एवं विश्वजीवन को ईश्वरीय गौरव प्रदान करने की ओर गया। उन्होंने आत्मानंद में तल्लीन रहने ही में मानव जीवन की चरितार्थता अथवा इतिश्री नहीं मानी। इस विराट स्वप्न अथवा आग्रह की ओर निश्चय ही अप्रत्यक्ष रूप में श्री अरविन्द को भूतविज्ञान से विशद प्रेरणा मिली। भौतिक जग, जो कि सर्वांगीण उन्नति के जीवन पथ पर एक अडिग पर्वताकार बाधा की तरह अड़ा था, भूतविज्ञान ने उसकी गुप्त शक्तियों को अर्जित कर एवं मानव जीवन के प्रांगण को संजो कर उसका रुपांतर करने की ओर भी कदम बढ़ाया। डारविन के जैव विकासवाद को अपने आरोहण-अवरोहण तथा संयोजन के सिद्धान्त के रूप में नया एवं पूर्ण रूप देकर उन्होंने अपने अधिमान अतिमान के सिद्धान्त द्वारा मानव मन तथा मानव चेतना के उच्च से उच्चतर विकास की ओर भी संभावना बताई और योग द्वारा उन दिव्य ऊँचाईयों का स्पर्श प्राप्त कर मानव के देह प्राण मन के धरातलों का परिष्कार करने की ओर भी संक्षेप में उस अतिमानसिक चेतना का प्रयोग किया। उस दिव्य प्रकाश से वे मानव की देह के रजकणों का भी रूपान्तर करना चाहते थे।

श्रीमाँ उनकी इसी महान सृजनशील योग की सिद्धि तथा उनकी दिव्य चेतना की सूक्ष्मतम प्रतीक तथा क्रियाशील प्रतिनिधि हैं। मातृ चेतना के सहयोग से ही श्री अरविन्द उस परम चेतना को विश्वजीवन में अभिव्यक्त करने का दिव्य संकल्प रखते थे। अतः श्रीमाँ ही उनके उस दिव्य ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी हैं जिसे वे मुक्तहस्त साधकों की दिव्य उपलब्धि के लिए वितरित करती रही हैं। श्रीमाँ पर निश्छल आस्था ही वह स्वर्णिम सोपान है जिसमें साधक अपने वर्तमान प्राण, मन, जीवन की सीमाएँ अतिक्रम कर उत्तरोत्तर विकास के अंतरिक्षों में विचरण करने में सफल होता है। जिस प्रकार हिमालय के शिखरों का अनुभव मनुष्य नीचे के धरातल पर खड़ा रहकर नहीं कर सकता और शिखर पर आरोहण करने के बाद ही वह धरती के जीवन को व्यापक दृष्टि से आर पार देखने में सक्षम होता है वैसे ही वर्तमान मन के धरातल से जो सत्य को खंड-खंड करके ही समग्र का आंशिक बोध प्राप्त करता है पूर्ण सत्य का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना भी संभव नहीं है, उसके लिए मानव मन को अन्तर्विकास के सोपानों पर आरोहण कर सत्य का साक्षात्कार करना होता है। श्री अरविन्द का अतिमानसिक सत्य वही दिव्य ऊर्वशिखर प्रणाली का सुव्यवस्थित ज्ञान प्राप्त करता है। श्रीमाँ आज विश्वचेतना के भीतर बैठ कर वहाँ दिव्य रूपान्तर का कार्य कर

रही हैं। वे सूक्ष्म में नवीन देह धारण कर अब स्थूल विश्व की क्रिया प्रणाली को अतिमानसिक सृजनप्रणाली में परिणत कर रही हैं। श्री अरविन्द के बिना उनका अस्तित्व नहीं उनके बिना श्री अरविन्द की चेतना विश्व में अभिव्यक्त नहीं हो सकती।

विश्वजीवन के विधान में नई ज्योति अवतरित हो चुकी है जो श्रीमाँ की सृजनशील चेतना है। वर्तमान युग की सीमाएँ उस ज्योति के दबाव से आज परिवर्तित एवं विघटित हो रही हैं। विश्व में आज उसी ज्योति का आलोड़न-उद्वेलन-जनित संघर्ष एवं हाहाकार है। जिस प्रकार पतझर के बाद नवीन कोपलों एवं कलिकुसुमों के सौन्दर्य से अस्थिपंजर वन के क्षितिज मंडित हो उठते हैं उसी प्रकार आज के युग का विश्वव्यापी दिग्भ्रांत संघर्ष निकट भविष्य में एक नवीन मानव-स्वर्ग के श्री सौन्दर्य प्रकाश एवं शान्ति में इस धरती पर अवतरित हो सकेगा, जिसके लिए मातृचेतना अगोचर से निरंतर धरती की चेतना को प्रेरित कर रही है। उस दिव्य प्रेम-स्वरूपिणी सर्वशक्तिमयी नवीन विश्वचेतना की परम प्रतिमा श्रीमाँ के चरणों में मैं अपना विनम्र प्रणाम निवेदन एवं अर्पण करता हूँ।

साभार -मातृ शती(1878-1978)



श्रीमाँ इन सब की प्रतिनिधि हैं। यहाँ शरीर में रह कर वह अतिमानस को धरती पर उतारने के लिए कार्य कर रही हैं। वह शक्ति अभी तक इस स्थूल जगत में इस प्रकार अभिव्यक्त नहीं हुई है कि यहाँ के जीवन को रूपांतरित कर सके। उन्हें इसी उद्देश्य से यहाँ कार्य करने वाली भगवती शक्ति समझना चाहिए। वह अपने शरीर में वही हैं, पर अपनी सम्पूर्ण चेतना में वह भगवान के सभी रूपों के साथ अपना तादात्म्य बनाए हुए हैं।

-श्री अरविन्द

प्रेम का तरीका

-श्रीमाँ

भगवान का प्रेम है सभी चीजों के भागवत 'सारतत्त्व' के लिए अभीप्सा, जिसे हमने सम्पूर्ण प्रदीप्ति के क्षणों में देखा है, और तब इस भागवत सारतत्त्व के प्रति आत्म-निवेदन, इस 'शाश्वत विधान' के प्रति हर क्षण, अपनी हर क्रिया में समग्र आत्म-दान। सम्पूर्ण समर्पण अब व्यक्ति केवल एक विनीत यन्त्र, परम प्रभु के सामने एक आज्ञाकारी सेवक रह जाता है। प्रेम इतना पूर्ण हो जाता है कि वह उस सबसे अनासक्ति पैदा कर देता है जो निरपेक्ष ब्रह्म नहीं है, उन पर पूर्ण एकाग्र नहीं है।

और इसके अतिरिक्त इससे भी ऊपर उठना असम्भव नहीं है क्योंकि स्वयं प्रेम भी प्रेमी और प्रेमपात्र के बीच अवगुण्ठन बन जाता है।

तीसरा उपाय मानवजाति के लिए प्रेम है। मानव जाति के दुःख-दर्द का तीव्र ज्ञान और एक स्पष्ट दृष्टि के परिणामस्वरूप इस दुःख-दर्द को समाप्त कर देने के लिए अपने आपको पूरी तरह समर्पित कर देने का संकल्प उठता है। चाहे कितनी भी कम मात्रा में क्यों न हो, औरों की सहायता करने के लिए अपने समस्त विचार अपनी समस्त शक्ति अपने सारे क्रिया-कलाप अर्पित कर देने में आत्म-विस्मृति।

करुणा के उमड़ते हृदयों के साथ दुःख पीड़ित संसार में जाओ, प्रशिक्षक बनो, जहाँ कहीं अविद्या-अन्धकार का राज्य है, वहाँ ज्योति जगाओ।

मानवजाति के प्रति समर्पण चार क्षेत्रों में अभिव्यक्त होता है। तुम औरों को चार तरह से दे सकते हो: भौतिक उपहार। बौद्धिक उपहार :ज्ञान। आध्यात्मिक उपहार: सामञ्जस्य, सुन्दरता, लय। सम्पूर्ण उपहार , उदाहरण का उपहार उन्हीं लोगों के द्वारा चरितार्थ किया जा सकता है जिन्होंने तीनों मार्गों का अनुसरण किया है जिन्होंने अपने अन्दर विकास के सभी तरीकों का, शाश्वत के बारे में सचेतन होने का समन्वय कर लिया है। एक ऐसा उदाहरण जो अपने ही बारे में नहीं सोचता, तुम उदाहरण बनते हो क्योंकि तुम हो, क्योंकि तुम शाश्वत दिव्य चेतना में निवास करते हो।

प्रेम वैश्व और सनातन है

प्रेम विश्वव्यापी महान शक्तियों में से एक है। इसका अस्तित्व अपने-आप में है और जिन विषयों में यह प्रकट होता है और जिनके द्वारा अपने-आपको प्रकट करता है उनसे इसकी गतिविधि मुक्त और स्वतन्त्र रहती है। इसे जहाँ कहीं अभिव्यक्त होने की सम्भावना दीखती है, जहाँ कहीं ग्रहणशीलता होती है जहाँ कहीं द्वार खुला होता है, वही यह अभिव्यक्त हो जाता है। तुम जिसे प्रेम कहते हो जिसे तुम निजी या व्यक्तिगत वस्तु समझते हो वह इस विश्वव्यापी शक्ति को ग्रहण करने और अभिव्यक्त करने की तुम्हारी क्षमतामाल है।

परन्तु विश्व्यापी होने के नाते यह कोई अचेतन वेग नहीं है, यह एक परम सचेतन दिव्य शक्ति है। यह सचेतन रूप से धरती पर अपनी अभिव्यक्ति और सिद्धि के लिए प्रयत्न करती है सचेतन होकर अपने उपकरण चुनती है, जो लोग इसके आवाहन का उत्तर दे सकते हैं उन्हें यह अपने स्पन्दनों के प्रति जागरित करती है और अपने शाश्वत लक्ष्य को उनके अन्दर संसिद्ध करने का प्रयास करती है, और जब कोई उपकरण अनुपयुक्त होता है तो उसे छोड़ कर दूसरों को ढूँढती है। मनुष्य सोचते हैं कि वे एकाएक प्रेम-पाश में बंध गये हैं वे अपने अपने प्रेम को उत्पन्न होते, बढ़ते और फिर मुरझाते देखते हैं-अथवा हो सकता है कि कुछ लोगों में जो उसकी अधिक स्थायी क्रिया के लिए विशेष रूप से उपयुक्त हैं, यह कुछ अधिक टिके। परन्तु यह समझना भ्रम है कि यह उनका अपना व्यक्तिगत अनुभव था। वह तो वैश्व प्रेम के सनातन समुद्र की लहर-माल थी।

प्रेम वैश्व और सनातन है यह अपने-आपको सदा अभिव्यक्त करता रहता है और अपने सार-रूप में सदा समरूप रहता है। यह एक 'भागवत शक्ति' है; इसकी बाह्य क्रियाओं में जो विकार दिखायी देते हैं वे इसके उपकरणों के होते हैं। प्रेम केवल मानव प्राणियों में ही अभिव्यक्त नहीं होता, यह सर्वत्र है। उसकी गति वनस्पतियों में भी है, शायद पत्थरों तक में भी है। पशुओं में इसकी उपस्थिति का पता लगाना सरल है। इस महान् और दिव्य शक्ति के विकार इसके सीमित उपकरण की मलिनता, अज्ञान और स्वार्थ से आते हैं।

प्रेम में कोई कामना नहीं होती

प्रेम में कोई चिपटने की वृत्ति नहीं होती, न कोई इच्छा, न स्वत्व की भूख और न स्वार्थ-भरी आसक्ति होती है। अपनी विशुद्ध गति में वह परमात्मा के साथ एक होने के लिए आत्मा की खोज है। यह एक ऐसी खोज है जो अन्य समस्त वस्तुओं से निरपेक्ष और निर्लिप्त रहती है। भागवत प्रेम अपने आपको देता है, कोई मांग नहीं करता। मनुष्यों ने इसको क्या बना डाला है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने इसे एक भद्दी और वीभत्स वस्तु बना दिया है। फिर भी मनुष्यों में भी प्रेम का प्रथम संस्पर्श अपने पवित्रतर सार का कुछ अंश ले आता है। क्षण भर के लिए वे अपने-आपको भुला देने में समर्थ हो जाते हैं, क्षण भर के लिए इसका दिव्य स्पर्श सभी सुन्दर और मनोहर चीजों को जगाता है और बढ़ाता है। परन्तु बाद में अपनी अपवित्र मांगों से भरी बदले में किसी चीज की याचना करती हुई जो कुछ देती है उसके बदले में कुछ चाहती हुई अपनी निकृष्ट तृप्तियों के लिए शोर मचाती हुई और जो कुछ देती है उसके बदले में कुछ चाहती हुई अपनी निकृष्ट तृप्तियों के लिए शोर मचाती हुई और जो दिव्य था उसे विकृत और कलुषित करती हुई मानव प्रकृति ऊपरी तल पर उठ आती है...।

(शेष अगले अंक में)

‘अग्निशिखा’ (vDVw 2016)

कप्तान तारा जौहर के साथ श्रीमाँ का पत्र व्यवहार

-संकलन

(तारा जौहर कई वर्षों तक श्रीअरविन्द आश्रम (पाण्डिचेरी के शारीरिक-शिक्षण-विभाग में छोटे बच्चों (हरित दल) की कप्तान रहीं।

प्रश्न:- मधुर माँ चैत्य परिवर्तन और आध्यात्मिक परिवर्तन में क्या फर्क है?

चैत्य परिवर्तन ऐसा परिवर्तन है जो अन्तरस्थ भगवान के साथ तुम्हारा सम्पर्क साध देता है, जो भगवान हर सत्ता के केन्द्र में हैं, चैत्य सत्ता उनका कोष और उनकी अभिव्यक्ति है। चैत्य परिवर्तन द्वारा तुम व्यक्तिगत भगवान से वैश्व भगवान में और अन्त में परात्पर में चले जाते हो।

आध्यात्मिक परिवर्तन तुम्हें सीधा परम प्रभु के सम्पर्क में ला देता है।

प्रश्न:- मधुर माँ, हम अपने चैत्य व्यक्तित्व को कैसे विकसित कर सकते हैं?

जीवन के सभी अनुभवों द्वारा चैत्य व्यक्तित्व रूप लेता, बढ़ता विकसित होता और वह अन्त में एक पूर्ण, सचेतन और मुक्त सत्ता बन जाता है।

विकास की यह प्रक्रिया अथक रूप से अनगिनत जन्मों तक चलती रहती है और अन्त में एक पूर्ण, सचेतन और मुक्त सत्ता बन जाता है और अगर तुम उसके बारे में सचेतन नहीं हो तो इसका कारण यह है कि तुम अपनी चैत्य सत्ता के बारे में सचेतन नहीं हो- क्योंकि वही अनिवार्य आरम्भ -बिन्दु है। अभ्यन्तरीकरण और एकाग्रता द्वारा तुम्हें अपनी चैत्य सत्ता के सचेतन सम्पर्क में आना होता है। इस चैत्य सत्ता पर हमेशा प्रभाव रहता है, परन्तु यह प्रभाव केवल एकदम से अपवादिक अवसरों को छोड़ कर प्रायः हमेशा गुहा रहता है, इसे न तो देखा, न समझा और न अनुभव किया जा सकता है।

इस सम्पर्क को मजबूत बनाने के लिए, और यदि सम्भव हो तो सचेतन चैत्य व्यक्तित्व के विकास में सहायक होने के लिए, एकाग्र होते समय तुम्हें उसकी ओर मुड़ना, उसे जानने और अनुभव करने के लिए अभीप्सा करनी चाहिए, उसके प्रभाव को ग्रहण करने के लिए अपने-आपको खोलना, और हर बार उससे संकेत मिलने पर बहुत सावधानी और सच्चाई के साथ उसका अनुसरण करना चाहिये। चैत्य सत्ता के विकास की आवश्यक शर्तें हैं- एक महान् अभीप्सा में जीना, अन्दर से शान्त रहने के लिए सावधानी बरतना और जहां तक बन सके ऐसा ही बने रहना, अपनी सत्ता की सभी क्रियाओं में पूर्ण सच्चाई स्थापित करना।



कुछ संस्मरण: 'मदर इंडिया' का जन्म

-अमल किरण

21 फरवरी श्रीमाँ का जन्मदिवस है। यही वह दिवस भी है जब 'मदर इंडिया' (श्री अरविंद आश्रम, पौण्डीचेरी से निकलने वाली पत्रिका का जन्म हुआ था) का जन्म हुआ था। 21 फरवरी 1949, यह श्री अरविन्द एवं श्रीमाँ की कृपा का ही दिन है।

कई मायनों में यह पत्रिका एक जोखिम का काम था। यह एक व्यापरी के 0 आर 0 पोददार का विचार था, लेकिन इसका जन्म व्यापार की संकीर्ण दृष्टि से नहीं हुआ था। इसमें कितना भी समय लगे, इसकी परवाह नहीं थी। यह इसलिए था क्योंकि श्री अरविन्द और श्रीमाँ ने इस योजना में रुचि ली थी और आशीर्वाद दिया था कि भारत की व्यापारिक राजधानी बम्बई से यह पत्रिका पाक्षिक के रूप में निकले जहाँ 'आत्मा' का अर्थ है व्यापार करने वालों को थोड़ा तनावमुक्त करने का अवसर। प्रथम अंक के लिए एल्डस हक्सले (Aldous Huxley) का संदेश (29 जनवरी 1949) मिला- 'मैं तुम्हारे इस जोखिम भरे कार्य में सफलता की कामना करता हूँ। यह अवश्य ही तुम्हारे बीहड़ में चिल्लाने की आवाज होगी। लेकिन अगर थोड़े लोग भी ध्यान देंगे तो कुछ कार्य अवश्य सिद्ध होगा।

मैं अपने बारे में -मदर इंडिया के संपादक के बारे में बतलाऊँ कि मुझे कविता और साहित्यिक आलोचना से प्रेम था। दर्शन शास्त्र और विज्ञान से भी मितता थी। इतिहास से भी घनिष्ठ सम्बन्ध रखना संभव था लेकिन राजनीति से कंपकपी छूटती थी। संपादक होने का सौभाग्य मिला तो प्रसन्नता हुई। यह श्री अरविन्द के आदर्श हेतु लेखनी से संघर्ष करने का सम्मान था। अगर श्रीमाँ ने संपादक की कुर्सी पर बिठाया है तो निश्चय ही इसके ठोस परिणाम निकलेंगे। उनकी व्यावहारिक अन्तः प्रेरणा पर विश्वास रखते हुए मैंने अपने भय को उनके सामने व्यक्त कर दिया - माँ मुझे एक विशेषज्ञ राजनीतिक चिन्तक और लेखक होना होगा।

लेकिन राजनीति की ओर मेरी रुझान नहीं है, योग्यता नहीं है। श्रीमाँ ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया - मेरी भी नहीं है। मैंने पूछा- तो मैं क्या करूँगा? फिर शांत मधुरता उन्होंने कहा- श्री अरविन्द हैं। वे हर बात में तुम्हारा मार्ग दर्शन करेंगे। एक आकस्मिक शक्ति के प्रवाह ने मुझे छू लिया।

मैंने कहा- हाँ माँ, श्री अरविन्द ही असंभव को संभव करेंगे, और सचमुच उन्होंने किया। उन्होंने पूरी तरह शून्य में से राजनीतिक समस्याओं के एक बहुसर्जक व्याख्या की सृष्टि कर दी। लेख उमड़ने लगे और यह बहुत आश्चर्यजनक था कि लोगों ने ज्वलन्त समस्याओं पर लिखे गये विचारों की प्रशंसा करना प्रारंभ किया, जैसे मैं राजनीति का दिव्य पुरुष होऊँ। यह तो मैं ही जानता था कि श्री

अरविन्द की कृपा ही सब कुछ कर रही थी। प्रत्येक संपादकीय चाहे वह कितना भी लम्बा हो, प्रकाशन से पहले उन्हें सुनाया जाता था और तदनुसार उनके अनुमोदन या संशोधन या अस्वीकृति का टेलीग्राम मिलता था। मदर इंडिया की सामग्री को अतिमानस के अवतार के बहुमूल्य समय में वरीयता प्राप्त होती थी। एक अवसर पर इस पाक्षिक में प्रकाशित सम्मतियों के बारे में एक साधक की संशयी वृत्ति की रिपोर्ट उन्हें दी गई तो उन्होंने कहा- क्या उसे मालूम है कि मदर इंडिया मेरा पत्र है? यह है प्रभुत मात्रा में कृपा !

बम्बई में संपादन कार्य के दौरान श्री अरविन्द और श्रीमाँ -दोनों की उपस्थिति लगातार अनुभव होती रही। वास्तव में इस उपस्थित ने खुले रूप से कार्यों का भार न लिया तो ऐसी गतिविधि हो ही न पाती।

यहाँ श्रीमाँ के आशीर्वाद की विशिष्ट घटना का उल्लेख अवश्य करना चाहूंगा। प्रथम अंक के प्रकाशन से पूर्व की तैयारी के समय की बात है। हम एक पाक्षिक निकालने वाले थे जबकि ऐसे साहसिक कार्य का कोई भी अनुभव हमें नहीं था। प्रवेशांक के बिना सोची गई तिथि से छः सात सप्ताह पहले ही कार्यालय बनाया गया था। दो या तीन अंकों से अधिक सामग्री हमारे पास तैयार नहीं थी।

एक दिन एक अनुभवी पत्रकार का आगमन हुआ। उसने हमें बतलाया कि हम पत्थरों में सिर मार रहे हैं। अगर हमारे पास छः महीने की सामग्री तैयार नहीं है तो 21 फरवरी को अंक निकालना दुःसाहस होगा। हमने कहा कि हमारा प्रथमांक शानदार होगा और इसे रोकना हमारे लिए शर्म की बात होगी। मेरे जैसे नये सम्पादक को एक चेतावनी भरी अंगुली उठाते हुए उसने कहा- चुपचाप शांत बैठे रहना बेहतर होगा। हमने कहा कि हम पूरे आवेश से काम करेंगे। उसने कहा -असंभव! पत्रकारिता के सारे अनुभव तुम्हारे विरुद्ध हैं। पर्याप्त शक्ति अर्जित करो, छः महीने की सामग्री अपने साथ में रखो और तब अंक निकालो।

हम उलझन में पड़ गये। शुरु करना और फिर असफल हो जाना- यह एक असह्य विचार था। मैंने श्रीमाँ से राय करना सर्वोच्च समझा। मैंने उन्हें अत्यावश्यक नोट लिखा- सारे पत्रकार हमें सलाह दे रहे हैं कि हम कुछ महीनों के लिए प्रकाशन स्थगित कर दें। वे कह रहे हैं कि हमारा सारा प्रयास नष्ट हो जाएगा। आप क्या कहती हैं?

27 फरवरी को मुझे टेलीग्राम मिला- प्रकाशन की निर्धारित तिथि पर डटे रहो। विश्वास रखो। आशीर्वाद! श्रीमाँ। हम हुंकार भरकर कार्य में जुट गये और श्रीमाँ की कृपा ने हमें अब तक सक्रिय रखा है। कठिनाईयाँ आई-मनोवैज्ञानिक, भौतिक, तकनीकी सब तरह की, लेकिन सब सुलझ गई और मदर इंडिया निकलने में कभी कुछ घण्टों का भी विलम्ब नहीं हुआ। मैंने और सहयोगी संपादक एस.आर. एल्बेस (s.r.Albess) ने बारम्बार ही दिन- प्रतिदिन के आफिस के कार्य में और प्रेस में माँ और श्री अरविन्द के मार्ग-दर्शक हाथ का अनुभव किया। गुह्य उपस्थिति को हम सीधे अपील करते

थे। तात्कालिक आवश्यकता का उत्तर मिलता था बल्कि और भी अधिक। कभी-कभी एक असहायता का अनुभव होता था कि समय पर कार्य होगा या नहीं लेकिन रात में एक आंतरिक अभीप्सा पुकारती है- मदर इंडिया के पाठक इस बारे में प्रबोध के लिए प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

पांडिचेरी से विदा होने से पूर्व मुझे श्रीमाँ से इन्टरव्यू की अनुमति मिली। उन्होंने कहा- सारी घटना मेरे लिए पूर्णतः स्पष्ट है। लेकिन मैं तुम्हें कुछ नहीं बतलाऊंगी। तुम्हें इसके बारे में स्वयं ही लिखना चाहिए। मैंने थोड़ी देर श्रीमाँ के साथ ध्यान किया और उसी रात बम्बई के लिए चल दिया। मद्रास से रेल की यात्रा के दौरान और वहाँ से बम्बई की उड़ान में मैं आंतरिक रूप से श्री अरविन्द एवं श्रीमाँ का आह्वान करता रहा कि मुझे सामने आए लेखन कार्य के योग्य बनाएँ। विशेषतः उस आध्यात्मिक रहस्य के कुछ अंश को समझने योग्य बनाएँ जो इतनी बड़ी-दुःखद घटना लग रहा है, वह रहस्य को प्रकट कर सके।

-पूर्व प्रकाशित



सम्बन्धों के पीछे का सच

हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि दो मानव जीवनों का सम्पर्क कितना स्थायी होगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उनको जोड़ने वाले आकर्षण सत्ता के कितने स्तर पर हैं और उन स्तरों पर कितनी गहराई क्रियाशील है।

केवल वे ही आपस में सदा के लिए संयुक्त हो सकते हैं जो अपने तथा समस्त वस्तुओं के शाश्वत तत्व में मिलते हैं, सायुज्य स्थापित करते हैं।

चिर मित्र वे ही हैं जो सदा मित्र रहते हैं, चाहे दूर हों, चाहे पास, चाहे इस जगत् में हों, चाहे अन्य जगत् में। ऐसे मित्रों के साथ हमारा मिलना किसी ऐसे पूर्व मिलन पर निर्भर करता है जो हमारी सत्ता की अजानी गहराई में हुआ होगा। इसके अतिरिक्त, जब कभी ऐसा मिलन होता है तो हमारा समस्त मनोभाव बदल जाता है।

जब हम अन्तःस्थित भगवान के साथ एक हो जाते हैं तो सभी चीजों के साथ उनकी गहराई में एक हो जाते हैं। वास्तव में, सबके साथ हमारा सम्बन्ध भगवान् में और भगवान के द्वारा ही होना चाहिए तब, न आकर्षण रहता है, न विकर्षण, न अनुराग, न विराग। जो भगवान् के निकट हैं, उनके हम निकट होते हैं, और जो उनसे दूर है, उनसे दूर।

- 'श्रीमातृवाणी, खण्ड' 2, पृ.82-83

श्रीमाँ का जन्मदिन

-सियाराम पालीवाल

21 फरवरी को श्रीमाँ का जन्म दिवस है 21 फरवरी 1878 को श्रीमाँ पेरिस में जन्मी थी 'श्रीमाँ'का बचपन का नाम मीरा था श्रीमाँ बहुत ही कम उम्र से ही सचेतन हो गयी थी और उनमें आन्तरिक चेतना जागृत हो गयी थी जब उन्होंने पेरिस में एक भारतीय युवक द्वारा भगवतगीता की फ्रेंच भाषा में अनुवादित एक पुस्तक प्राप्त हुई तो वे उस पुस्तक से बहुत प्रभावित हुई और भारत को जानने की तीव्र जिज्ञासा उनके मन में उत्पन्न हुई। जब उनके पति द्वारा श्री अरविन्द के विषय में बताया गया

तो उनमें श्री अरविन्द के दर्शनों की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न हुई और भारत के प्रति उनमें अदम्य आकर्षण का अनुभव होने लगा। सन् 1914 में वे पाण्डिचेरी पहुँचीं।

श्री अरविन्द का साक्षात्कार पाकर श्रीमाँ को इस बात की अनुभूति हुई कि यही वह महान आत्मा है जो संसार को अन्धकार में से निकालकर सच्चे ज्ञान का प्रकाश दे सकती है। और उन्होंने यह निर्णय कर लिया कि वे श्री अरविन्द के कार्य को ही करेंगी और उनके आदर्श को एवं कार्य को पूरा करने में अपना जीवन व्यतीत करेंगी। अन्ततोगत्वा श्रीमाँ 24 अप्रैल 1920 को दुबारा पाण्डिचेरी आई और सदैव के लिए भारत में रह गई।

श्री अरविन्द श्रीमाँ को दैवी शक्तियों से परिपूर्ण मानते थे और उनकी चैत्य शक्ति के प्रति अपने शिष्यों से कहते थे कि वे श्रीमाँ के मार्गदर्शन में आत्मिक उन्नति करें, अपनी आत्मा को पहचानें और श्रीमाँ के प्रति पूर्ण समर्पण भाव से अपने को अर्पित कर दें ॥

श्री अरविन्द हमें आश्वस्त करते हैं कि, इस विषय में निस्संदिग्ध रहो कि तुम्हें इस पथ पर ले जाने के लिए श्रीमाँ सदा तुम्हारे साथ रहेगीं। कठिनाइयाँ आती हैं और चली जाती हैं पर श्रीमाँ हैं इसलिए विजय सुनिश्चित है। सब कुछ श्रीमाँ पर छोड़ देना, पूर्ण रूप से उन्हीं पर भरोसा रखना और उन्हें लक्ष्य की ओर ले जाने वाले पथ की ओर अपने को ले जाने देना ही समुचित मनोभाव है। यदि कोई माताजी में पूर्ण विश्वास बनाये रखे और अपनी चैत्य सत्ता को खोले रखे तो माताजी की शक्ति सब कुछ करेगी और मनुष्य का बस इतना ही काम होगा कि वह अपनी अनुमति दे, अपने को खोले रखे और अभीप्सा करे। जब कठिनाइयाँ आयें तो अचंचल बने रहो और उन्हें दूर करने के लिए माताजी को पुकारो। श्रीमाँ की शक्ति को जब तुम अनुभव नहीं करते तब भी वह तुम्हारे साथ रहती है। स्थिर अचंचल बने रहो और अपने प्रयास में लगे रहो। श्रीमाँ के शक्ति के बिना कुछ नहीं किया जा सकता।

श्रीमाँ की शक्ति भागवत शक्ति है जो अज्ञान का निवारण करने और मानव प्रकृति को दिव्य प्रकृति में परिवर्तन करने के लिए कार्य करती है। जब मैं श्रीमाँ की शक्ति की बात करता हूँ तब मैं

प्रकृति की शक्ति की बात नहीं करता जिसके भीतर अज्ञान की चीजें होती हैं बल्कि भगवान की उच्चतर शक्ति की बात करता हूँ जो प्रकृति का रूपान्तरण करने के लिए ऊपर से अवतरित होती हैं।

भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं, मेरी अध्यक्षता में प्रकृति, विश्वजननी सभी वस्तुओं को उत्पन्न करती है। श्रीमद्भागवत में वे कहते हैं कि मैं अपनी योगशक्ति के द्वारा परस्पर सृजन शक्ति के माध्यम से प्रकट होता हूँ। प्रत्येक जीव के अन्दर श्रीमां की भगवती शक्ति गुप्त रूप से विराजमान है उन्हें जागृत करना ही शक्ति साधक को एकाग्रता और ध्यान करने की शक्ति प्रदान करती है।

साधक के लिये आवश्यक बात यह है कि वह सब कुछ श्रीमां की इच्छा पर छोड़कर बस ग्रहणशील बना रहे। इस ग्रहणशीलता के अन्दर मन और हृदय की पवित्रता, पूर्ण आत्मोद्धाटन गम्भीर आत्मस्थिरता, भावावेगमय मन का संयम प्राणगत शान्ति, अखंड प्रेम अभीप्सा तथा पूर्ण आत्म समर्पण शामिल है।

मातृ शक्ति को ग्रहण करने की क्षमता प्राप्त होती है एकाग्रचित होकर ध्यान करने से। ध्यान के दो केन्द्र हैं- हृदय और मस्तिष्क। हृदय में हम उस शक्ति को उस प्रेम शक्ति के रूप में अनुभव कर सकते हैं जो व्यक्ति को चलाती है और सम्पूर्ण विश्वतंत्र को गति प्रदान करती है। मस्तिक में जहाँ यह शक्ति शिव या परम पुरुष के साथ युक्त होती है, हम उसे उस क्रियाशील दिव्य शान्ति के रूप में अनुभव करते हैं। स्थूल, मिट्टी से लेकर सूक्ष्म आकाश तक जो कुछ भी है वह सब इस विश्वेतना के, इस ज्योतिशिखा के इस ब्रह्माग्नि के खेल के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

यह शक्ति विश्व ब्रह्माण्ड के अंदर पाँच क्रियाएँ करती है-सृजन, पालन, संहार, आच्छादन और उदघाटन। ये ही क्रम विकास और क्रम परिवर्तन की प्रक्रियाएँ हैं जिनके भीतर से होकर इस प्राणि जगत को गुजरना पड़ता है। इसी क्रम को ऋषियों ने व्यक्ति स्वरूप प्रदान किया है- सृष्टिकर्ता को ब्रह्म, पालनकर्ता को विष्णु, संहारकर्ता को रुद्र, पूर्णचेतना के स्वामी को महेश और सत्-आनन्द प्रभु को सदाशिव नाम दिया था। इसी तरह इन देवों की शक्तियों के भी नाम दिये हैं। क्रमशः उनके नाम हैं।-सरस्वती, लक्ष्मी, काली, महेश्वरी और मनोन्मणि। पूर्णता, सामंजस्य, सामर्थ्य, ज्ञान और आनन्द ये पाँच शक्तियाँ हैं जो मनुष्य को देवत्व प्रदान करती हैं और इन्हीं के व्यक्तिरूप ऊपर से देवता हैं। किसी देवता के ऊपर एकाग्रचित होकर ध्यान करने से साधक उनकी शक्ति को प्राप्त कर लेता है। हम जिन्हें माँ कहते हैं वह एक दिव्यशक्ति हैं, एक भागवत शक्ति हैं और रूपान्तर करने वाली इन विश्व शक्तियों का मूल स्रोत हैं।

‘माँ’ - ‘माँ’ - बस यही शक्ति के साधक का मंत्र है साधक उन माँ के अन्दर ही रहता है, केवल उन्हीं की इच्छा का अनुसरण करता है और सब समय, सब जगह सब चीजों में बस माँ को ही देखता है। वह नित्य निरंतर यही पुकारता रहता है-

अस्तो मा सदगमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतं गमय ।

दिव्य और अनंत माँ के प्रति आत्मसमर्पण करना ही चाहे वह कितना ही कठिन क्यों न हो, हमारे लिए एकमात्र फलदायी साधन है और वही हमारा एकमात्र स्थायी आश्रय है। माँ के प्रति आत्मसमर्पण करने का अर्थ यह है कि हमारी प्रकृति उनके हाथों का चित्त और हमारी अन्तरात्मा उनकी गोद का बालक बन जाये।

-पूर्व प्रकाशित

अग्नि-परीक्षाओं या लुटियों के सम्मुख

यदि अग्नि-परीक्षाओं या लुटियों ने तुम्हें पछाड़ दिया है, यदि तुम दुःख के अथाह गर्त में डूब गये हो तो ज़रा भी शोक न करो, क्योंकि वस्तुतः वहीं पर तुम्हें मिलेगा भगवान का स्नेह, उनका परम आशीष ! क्योंकि तुम पावनकारी दुःखों की अग्नि में तप चुके हो, इसलिए अब तुम्हें गौरवमय शिखर मिलेंगे।

तुम बंजर बीहड़ में हो तो सुनो नीरवता की वाणी। बाहर की स्तुति और प्रशंसा का कलरव ही तुम्हारे कानों को सुख देता रहा है; अब नीरवता की वाणी तुम्हारी आत्मा को सुख देगी, तुम्हारे अन्दर जाग्रत करेगी गहराइयों की प्रतिध्वनि, दिव्य स्वर-संगतियों का नाद!

तुम गहन रात्रि में चल रहे हो: तो रात्रि की अमूल्य सम्पदा संग्रह करते चलो। सूर्य का उज्ज्वल प्रकाश बुद्धि के मार्ग आलोकित कर देता है, किन्तु रात्रि की श्वेत प्रभा में पूर्णता के गुप्त पथ दृष्टिगोचर होते हैं, आध्यात्मिक सम्पदाओं को रहस्य खुलता है।

तुम नग्नता और अभाव के मार्ग पर हो: यह प्रचुरता का मार्ग है। जब तुम्हारे पास कुछ न बचेगा तो तुम्हें सब कुछ दिया जायेगा। क्योंकि जो सच्चे और सीधे हैं उनके लिए बुरे-से-बुरे में से सदा भले-से-भला निकला आता है।

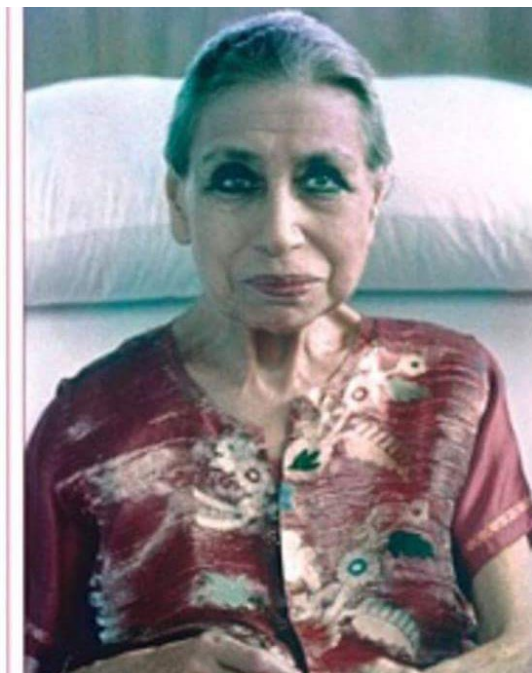
जमीन में बोया हुआ एक दाना हजारों दाने पैदा करता है। दुःख के पंखों का प्रत्येक स्पन्दन गौरव की ओर ले जाने वाली उड़ान बन सकता है।

और जब शत्रु मनुष्य पर क्रुद्ध हो टूट पड़ता है, तो वह उसके नाश के लिए जो कुछ करता है, वही इसे महान् बनाता है।

- 'श्रीमातृवाणी', खण्ड 2, पृ.42

श्रीमाँ का स्वरूप और उनका कार्य

-चन्द्रदीप



एक बार एक साधक ने श्री अरविंद को पत्र लिखकर पूछा था: “ऐसे बहुत से लोग हैं जिनका मत है कि श्रीमाँ मनुष्य थीं, पर अब उन्होंने भगवती माता को अपने अंदर मूर्तिमान् किया है..., पर मेरे मन की धारणा, मेरे अंतरात्मा का अनुभव यह है कि वह स्वयं भगवती माता ही हैं जिन्होंने अंधकार, दुःख-कष्ट और अज्ञान का जामा पहनना इसलिये स्वीकार किया है कि वह सफलतापूर्वक हम मनुष्यों को ज्ञान, सुख और आनन्द की ओर तथा परम प्रभु की ओर ले जा सकें।” श्रीअरविंद ने उत्तर में लिखा था: “भगवान स्वयं मार्ग पर चल कर मनुष्यों को राह दिखाने के लिये मनुष्य का रूप धारण करते हैं और बाहरी

मानव-प्रकृति को स्वीकार करते हैं। यह एक अभिव्यक्ति होती है, बढ़ती हुई भागवत चेतना अपने आपको प्रकट करती है। यह मनुष्य का भगवान में बदल जाना नहीं है। श्री माँ अपने आंतर स्वरूप में बचपन से ही मानव-तत्व से ऊपर थीं...।”

एक बार आश्रम के बालकों ने स्वयं श्रीमाँ से ही पूछा था कि आपको अपने अंतरात्मा का पता कब लगा, तो श्रीमाँ ने कहा कि शायद जन्म से ही मुझे उसका ज्ञान था। जब हम श्रीमाँ के जीवन और कार्य का अध्ययन करते हैं तो यह स्पष्ट पता चलता है कि जन्म से ही उनके भीतर एक ऐसी चेतना थी जो सामान्यतया मनुष्य के भीतर नहीं होती। श्री अरविंद ने अपने ‘सावित्री’ महाकाव्य में सावित्री के विषय में कहा है कि “अपने स्वर्गीय मूलस्तोत्र के विषय में सचेतन एक आत्मा इस पृथ्वी के अपूर्ण साँचे में अवतीर्ण हुई और नश्वरत्व के अंदर आ गिरने के कारण रोई नहीं, बल्कि अपने विशाल-शांत नेत्रों से सब वस्तुओं की ओर ताकने लगी।..., उसके बचकाने कार्यों में भी ऐसा लगता था कि वह एक ऐसी ज्योति के संपर्क में है जो पृथ्वी से बहुत दूर अवस्थित है। उसकी भावनाएँ मानो शाश्वत सत्ताओं की जैसी

हों, उसके विचार मानो देवताओं के सहज स्वाभाविक विचारों के जैसे हों।”

श्रीमाँ के जीवन की घटनाएँ स्पष्टतः किसी ऐसी ही एक चेतना का परिचय देती हैं। छः वर्ष की उम्र में एकांत में बैठकर संसार के दुःखों से दुःखी होना और चुपचाप एक कोने में बैठकर रोना, संसार का दुःख हरने के लिये भगवान से प्रार्थना करना, स्कूल में जाने पर अन्य बच्चों की अपेक्षा अधिक गंभीर रहना, बच्चों को उनकी कठिनाईयों में सहायता देना, गंभीर अवसरों पर परम विज्ञ की तरह परामर्श देना या किसी प्रश्न का निर्णय करना, बालकोचित सामर्थ्य से बाहर की किसी शक्ति का परिचय देना, लगातार एक वर्ष तक एक ही ऐसा स्वप्न देखना जो उनके भावी आध्यात्मिक जीवन का प्रतीक हो, आदि-आदि बातें साफ-साफ सूचित करती हैं कि उनके भीतर बचपन से ही कोई अपार्थिव चेतना सक्रिय थी और उनके जीवन को एक नवीन धारा में परिचालित कर रही थी। बचपन में वह उद्धत, मनमानी करने वाली, अनुशासनहीन नहीं थीं, पर उनके आत्मा की जो मांग थी, उनकी सत्ता के सत्य की अभिव्यक्ति का जो मार्ग था, उस पर वह अटल थीं। उनकी माताजी की इच्छा थी कि वह एक साथ भिन्न-भिन्न प्रकार की कलाओं का अभ्यास करती थी। उनकी माँ झल्लाती थीं, कहती थीं कि यह लड़की जीवन में कुछ नहीं कर सकेगी, कभी-कभी डाँटती भी थीं, पर वह शांत रहकर अपने कार्य में लगी रहती थीं, और जब एक बार उनकी शांत साधना के विरुद्ध कड़ी आवाज उठायी गयी, तो उन्होंने बलशाली दृढ़ आवाज में सुना दिया कि पृथ्वी की कोई भी शक्ति मेरे आत्मा पर शासन नहीं कर सकती। उन्होंने अपने जीवन के इसी बहुमुखी विकास के अनुभव के बल पर आगे चलकर आश्रम के स्कूल के बच्चों के पाठ्यक्रम का भी ऐसा विधान निश्चित किया जिससे विद्यार्थियों की सत्ता का सर्वांगीण विकास हो सके। उन्होंने एक दिन इस आशय की बात आश्रम के बालकों की कक्षा में कही थी कि किसी एक विषय का अनुशीलन करने से उस विषय में मनुष्य बहुत अधिक पारंगत हो सकता है और उसकी एक विशेष क्षमता अपने अंतिम शिखर तक विकसित हो सकती है, पर उनकी सत्ता के अन्यान्य अंग वैसे ही अविकसित और विकलांग रह जायेंगे। वर्तमान जीवन में एक प्रकार की सफलता मिलेगी, पर जीवन के सर्वांगीण विकास के क्षेत्र में भयानक दीनता ही प्राप्त होगी। उसी तरह जीवन के हर क्षेत्र में हम उन्हें एक नवीन दृष्टिकोण से चलते देखते हैं और नये-नये अनुभव प्राप्त करने की ओर प्रवृत्त देखते हैं।

बचपन में ही वह एक बार बीमार पड़ गई और उन्हें कई दिनों तक चारपाई पर लेटे रहना पड़ा। सामान्यतया मनुष्य उस स्थिति में लाचार पड़ा रहता है अथवा किन्हीं मामूली बातों में उलझे रह कर समय काटना चाहता है। पर उन्होंने सोचा, क्या ऊपर के कमरे में लेटे-लेटे यह देखा जा सकता है कि नीचे बगीचे में बने कला-कक्ष में कौन-कौन हैं और वे क्या-क्या कर रहे हैं?

उन्होंने सोये-सोये अपनी दृष्टि की क्षमता बढ़ाने का अभ्यास शुरू कर दिया और कुछ ही दिनों बाद उनकी दृष्टि वहाँ पहुँच गयी और जब कोई उनके पास आया तो उन्होंने पूछा-” कला-कक्ष

में अमुक व्यक्ति अमुक काम कर रहा है ?“ उत्तर मिला- “हाँ, पर तुमने कैसे जाना?” इस तरह शायद नाना समयों में नाना प्रकार के अभ्यास उन्होंने किये और मनुष्य के लिए दुर्लभ शक्तियों को प्राप्त किया। उन्होंने अपनी कक्षा में एक बार बताया था कि केवल पाँच ही ज्ञानेन्द्रियाँ नहीं हैं, बल्कि बारह हैं और ये कोई आध्यात्मिक शक्तियाँ नहीं, भौतिक शक्तियाँ ही हैं।

श्रीमाँ ने अत्यन्त छोटी अवस्था से ही भगवान की खोज शुरू कर दी और उनके अंतरात्मा की अभीप्सा ही उनकी सहायता के लिये आवश्यक चीजें जुटाने लगीं। ठीक है कि जहाँ चाह होती है वहाँ राह भी होती है। देखते हैं कि शुरू से ही एक सूक्ष्म सत्ता उनके स्वप्न में आकर उनका पथप्रदर्शन करने लगे और भारत की कोई भी बात जाने बिना अपनी अंतर्बोधि के इशारे पर वह उन्हें ‘कृष्ण’ पुकारने लगीं। यह कृष्ण पहले स्वप्न में, फिर जाग्रत् अवस्था में भी प्रकट होने लगे और शुरू से अंत तक उनका पथ-प्रदर्शन करते रहे। अन्यान्य बहुत से ऋषि-मुनि-देवता भी आये और अपना कार्य करके चले गये। पर कृष्ण ने कभी साथ नहीं छोड़ा। श्रीमाँ ने उनका एक रेखाचित्र भी बनाया था। श्री माँ को पहले ही यह मालूम हो गया था कि यह कृष्ण कहीं भौतिक शरीर में भी हैं और उनके पास ही जाकर उनके कार्य में सहायक होना है। इसीलिये अपनी साधना काफी आगे बढ़ जाने पर उन्होंने उस व्यक्ति को खोजना शुरू कर दिया। जब उन्होंने श्री अरविन्द को सन् 1914 में पहली बार देखा तो वह तुरंत पहचान गई कि उनके वह कृष्ण ही यहाँ मूर्तिमान हो रहे हैं। उन्होंने श्रीअरविन्द को देखने के बाद ही राधा- भाव से अपनी संपूर्ण सत्ता का समर्पण करते हुए एक प्रार्थना लिखी जो ‘राधा की प्रार्थना’ के नाम से प्रसिद्ध है।

श्रीमाँ फ्रांस में अपने ढंग से साधना करती थीं और श्री अरविन्द भारत में। परन्तु जब हम दोनों व्यक्तियों के विचारों को देखते हैं तो उनमें एक अद्भुत सादृश्य दिखायी देता है। उन विचारों में भगवान, जीवन, जीवन का लक्ष्य और साधना आदि सभी विषयों के सम्बन्ध में एक ही जैसा ज्ञान ओत-प्रोत है। केवल कहने के ढंग में फर्क है। एक ओर सब कुछ बुद्धि की भाषा में व्यक्त हुआ है और दूसरी ओर हृदय की भाषा में। एक ओर मुख्यतया शुद्ध ज्ञान मूर्तिमान हुआ है तो दूसरी ओर उस ज्ञान को संसिद्ध करने वाली शक्ति। दोनों व्यक्तित्व मानो एक ही परात्पर व्यक्तित्व के दो रूप हैं और परिपूरक वस्तुतः श्री अरविन्द के माध्यम से ही श्रीमाँ को अभिव्यक्त हो सकते हैं, तथा श्रीमाँ के माध्यम से ही श्री अरविन्द को ठीक-ठीक समझा जा सकता है। इन दोनों व्यक्तित्वों के सम्मिलित प्रयास से ही एक ऐसी नवीन पद्धति उद्घासित हुई है जो मनुष्य-जाति को उसके उच्चतम आर्दश ‘दिव्य शरीर में दिव्य जीवन’ की प्राप्ति की ओर ले जा सकती है और पृथ्वी पर एक अतिमानसिक दिव्य समाज की स्थापना कर सकती है। उन्होंने केवल वह ज्ञान दिया ही नहीं उसे प्राप्त किया है, उस पथ का केवल वर्णन ही नहीं किया है, बल्कि उस पथ पर चल कर, उस जीवन को विकसित करके एक जीवंत आर्दश भी हमारे सामने रखा है जिससे हमें उस पथ पर चलकर अपने जीवन को नये रूप में गढ़ने की अटूट प्रेरणा प्राप्त हो।

आश्रम के मुख्य मंत्री श्री नलिनी कांत गुप्त ने एक जगह अपनी एक बांग्ला पुस्तक में बतलाया है कि जहाँ-जहाँ जीवन है वहाँ-वहाँ एक चेतना का भार-केन्द्र भी है, और वहीं से वह चेतना क्रियाशील होकर अपना विकास करती है। जड़-स्तर पर जड़-चेतना का कोई भार-केन्द्र नहीं है, इसलिए वहाँ कोई जीवन नहीं था। पर उसके बाद चेतना विकसित होकर पेड़-पौधे के मूल में केन्द्रित हुई जिससे पेड़-पौधे खड़े हो गये और वहाँ उद्भिज-जीवन का विकास हुआ। फिर मनुष्य में आकर चेतना कंठ में केन्द्रित हुई जो स्थूल मन का केन्द्र है और फलस्वरूप मनुष्य दो पैरों पर खड़ा हुआ तथा समस्त मानव-जीवन विकसित हुआ। आगे के विकास के लिये चेतना को किसी अन्य उच्च केन्द्र में केन्द्रित होना होगा जिसमें पृथ्वी पर एक उच्च आध्यात्मिक मनुष्य और आध्यात्मिक जीवन का विकास साधित हो सके।

श्रीमाँ का जीवन हमें बताता है कि वह केन्द्र मनुष्य के स्वयं अपने अंदर ही विद्यमान है। वह केन्द्र है हमारी चैत्य-चेतना। श्रीमाँ, श्री अरविंद की शिक्षा हमें बताती है कि हमारी चैत्य चेतना हमारे स्थूल मन-प्राण-शरीर की चेतना के पर्दे के पीछे हमारे हृत्केन्द्र में अवस्थित है। यदि हम उनके पथ का अनुसरण कर अपने मन-प्राण-शरीर को शांत और निष्क्रिय बना कर अपनी केन्द्रीय चेतना को चैत्य-चेतना के साथ एकाकार कर दें और फिर उस चेतना को अपनी बाहरी प्रकृति में, मन-प्राण-शरीर की चेतना में कार्य करने दें, चैत्य चेतना को अपना जीवन नये ढंग से पुनर्निमित्त करने दें, तो हमारे अंदर चैत्य और आध्यात्मिक जीवन का विकास होने लगेगा। श्रीमाँ कहती है: “जब कोई अपने अंतरात्मा (चैत्य पुरुष) को खोजने का, उसके साथ युक्त होने का, अपने जीवन को उससे परिचालित कराने का आवश्यक आंतरिक प्रयास करता है तो अधिकांश समय इस खोज में ऐसा चमत्कार घटित होता है, जो अभिभूतकारी होता है और सब से पहली अंतःप्रेरणा यह कहने की होती है, “अब मुझे वह चीज मिल गयी जिसकी मुझे आवश्यकता है, मैंने असीम आनंद पा लिया है और अब मुझे वह चीज मिल गयी अन्य किसी चीज में व्यस्त रहने की आवश्यकता नहीं।”...,, “निस्सन्देह, जब मनुष्य अपने अन्तरात्मा के विषय में सचेतन होता है, जब वह अपने चैत्य पुरुष के साथ एकाकार हो जाता है, केवल तभी उसकी दृष्टि के सामने युग-युग से होने वाले उसके व्यक्तिगत विकास का समूचा चित्र एक साथ उद्घासित हो सकता है। तभी मनुष्य जानना आरम्भ करता है, उससे पहले नहीं। मैं विश्वास दिलाती हूँ कि तब सारी चीज बहुत मजेदार बन जाती है। उससे जीवन की स्थिति ही बदल जाती है।...,, केवल उसी समय मनुष्य अपनी भवितव्यता की धारा का अनुसरण कर सकता तथा अपने लक्ष्य को और वहाँ पहुँचने के मार्ग को सुस्पष्ट रूप में देख सकता है।...,, सचमुच एक अधिक सत्य, अधिक गंभीर और अधिक स्थायी चेतना में नवजन्म हो जाता है।” श्रीमाँ इस नवजन्म की चर्चा करते हुए एक जगह कहती हैं, “मैं तुम्हें यह भी याद दिला दूँ जिसे श्रीअरविंद ने कहा, लिखा तथा प्रस्थापित किया है एवं जिसे बार-बार दुहराया है; वह बात यह है कि इस अनुभूति के होने से पहले नहीं, उसके बाद ही उनका योग आरम्भ हो सकता है।

इस चैत्य चेतना का सम्पर्क प्राप्त हो जाने पर यह चेतना वैसे ही स्वाभाविक रूप से कार्य करने लगेगी और एक नवीन चैत्य जीवन का विकास करने लगेगी, जैसे इससे पूर्व प्राण-चेतना या मनोमयी चेतना ने किया था। चैत्य चेतना एक ओर तो अपने से ऊपर की चेतना, आध्यात्मिक चेतना, वैश्व आत्मा के साथ अपना संबंध स्थापित कर सकती और उसकी उच्चतर शक्तियों को नीचे उतार सकती है और दूसरी ओर अपने से नीचे की चेतनाओं मन, प्राण और शरीर की चेतनाओं पर कार्य कर सकती और आध्यात्मिक-चैत्य-चेतना की शक्तियों की सहायता से स्वयं अपने को तथा मन-प्राण-शरीर को अज्ञान से मुक्त कर सकती और रूपांतरित कर सकती है। और इसी तरह और आगे बढ़कर परात्पर अतिमानसिक चेतना में जाकर वहाँ की शक्तियों की सहायता से समूचे आधार का अतिमानसिक रूपांतर साधित कर सकता है जो इस योग का अंतिम लक्ष्य है।

श्रीमान् ने अपने जीवन से और अपनी शिक्षा से हमें यहीं सिखाया है और अपनी तपस्या के द्वारा जगत् और मानव-जीवन के इस महान् दिव्य रूपान्तर का मार्ग खोल दिया है। उनके इस जन्म-दिवस के शुभ अवसर पर हम यदि यह संकल्प करें और व्रत ग्रहण करें कि हम उनकी शिक्षाओं को हृदयंगम करने का निरंतर प्रयास करेंगे तथा अन्यान्य साथी मनुष्यों को भी, जहाँ संभव होगा, और उसके अनुसार ऐसी प्रेरणा देने की कोशिश करेंगे तो उससे हमारा जीवन बदलेगा और एक नये प्रकार का जीवन और समाज पृथ्वी पर विकसित होगा। अगर हम सच्चाई के साथ इसका प्रयास करेंगे तो उनकी सहायता हमें बराबर प्राप्त होगी, क्योंकि वह अपने जीवन-कार्य को पूर्ण करने के लिए अभी भी उसी भाँति कार्यरत हैं जिस भाँति वह अपने जीवन-काल में थीं। श्री अरविन्द अपनी पुस्तक 'माता' में कहते हैं। “अतिमानसिक रूपांतर भगवान्निर्दिष्ट है और पार्थिव चेतना के विकासक्रम से उसका होना अनिवार्य है; कारण, इसकी ऊर्ध्वमुखी गति समाप्त नहीं हुई है, मन ही इसका सर्वोच्च शिखर नहीं है। परन्तु इस रूपांतर के होने, रूप ग्रहण करने और चिरस्थायी होने के लिये यह आवश्यक है कि नीचे से उसके लिये पुकार हो, ऐसी उत्कंठा के साथ कि जब वह ज्योति अवतीर्ण हो तो वह उसे पहचाने, स्वीकार करे, अस्वीकार न करें; साथ ही यह आवश्यक है कि इसके लिये ऊपर से भगवान् की अनुमति हो। इस अनुमति और इस पुकार के बीच में जो शक्ति मध्यस्थता का काम करती है। वह भगवती माता की सत्ता और शक्ति है। केवल माता की ही शक्ति, कोई मानवी प्रयास और तपस्या नहीं, आच्छादन को छिन्न और आवरण को विदीर्ण कर पाल को स्वरूप में गढ़ सकती है और इस अधंकार और असत्य और मृत्यु और क्लेश के जगत् में ला सकती हैं सत्य और प्रकाश और दिव्य जीवन और अमृतत्व का आनंद।”

साभार -मातृ शती(1878-1978)

भागवत सृष्टि उद्देश्य व श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली एक परिचय

-करुणामयी

श्री अरविन्द आश्रम

दिल्ली

में आकर

महत-बृहत उद्देश्य- परम का

स्वयं

सृष्टि -उद्देश्य -स्वप्न बन

स्पंद बन गया

जो

साँसों का जग-जीवन का छन्द बन गया

मर्म बन गया

उत्तर पृथ्वी पर

कर्म बन गया

मानव का युग-धर्म बन गया ।

भटके खोजिल कदमों को

उलझाकर या सुलझाकर

एक प्रेरणा बीज

धरा में धँसकर

उसकी दुर्दम अग्नि-अश्रु की सिसक

संजोकर

अहरह आर्त पुकार उठाए

निज स्रष्टा के हृदय -केन्द्र उद्दिष्ट

सअर्घ्य ले धूल-धूम उठा

और वट-वृक्ष बन गया ।



नया सफ़र

-विमला गुप्ता

इस पगडंडी से हो कर ही
आगे तेरा नया सफ़र है,
किस शंका ने किसके भय ने
छूट रहा क्या पीछे तेरा
बचपन यौवन के कुछ खेल ?
साथ खेलकर साथी सारे
जब अपने घर हैं मुड़ जाते
अपनी दुनिया में खो जाते
फिर ना आते । तूने भी तो कितनी बार
ऐसे खेल रचे और खेले
शेष हुए अब वह सब मेले
मन कर शोक!
इतना ही है जम कर सार
आगे जो है सब अनजाना
पर उस पर ही तुझको जाना ।
देख उधर उस नयी दिशा में
जहाँ पहुँचने भर कि देर
नहीं वहाँ कोई फिसलता
रेत कणों सा
किरणों में परिणित हो जाता ।
कब से जाने कितनी बार
तूने जन्म मरण के द्वारा
हँसकर रोकर किये हैं पार
अब मत चूक !
इस पगडंडी तक आकर तू
मत पीछे कि ओर निहार
आगे तेरा नया सफ़र हैं ।

तपस्या का मर्म

नलिनीकांत गुप्त

तपस्या (तपश्चर्या) का अर्थ साधारणतः लगाया जाता है शारीरिक असुख और कष्ट सहन की क्षमता। हम तपस्या के विभिन्न रूपों से परिचित हैं- गरमी में सिर पर दुपहरी के तपते सूरज के नीचे, अपने चारों ओर आग जलाकर बैठना, (पंचाग्निव्रत) बराबर जमी रहने वाली हिमराशियों में तीक्ष्ण शीतल वायु के दर्शनों के बीच नंगे बदन रहना, चुभती नोकोंवाली काँटियों के बिछावन पर सोना, भस्म और चट्टी धारण किये रहना, उपवास करते हुए मरने-मरने को हो जाना। मनुष्य ने अपनी तेज बुद्धि से अपने आपको पीड़ित करने के अनंत तरीके और उपाय निकाल लिए हैं। आध्यात्मिक, धार्मिक और यहाँ तक कि नैतिक अभीप्सुओं में भी यह भावना किसी प्रकार घर कर गयी है कि शरीर ही सारी बुराई की जड़वाला असुर है, उसे ही लगाम, चाबुक और दंड से दबाना और वश में लाना है। वास्तव में प्रचलित दृष्टि किसी संत की महानता को उसके शारीरिक कष्टों से भाँपती है।

ऐसे लोगों को शायद यह मालूम नहीं कि असुर को वश में करना या छकाना इतना आसान नहीं क्योंकि बात यह है कि शरीर के लिए दंड और सब प्रकार के कष्ट सहकर भी यह अनुभव करना आसान है कि अपनी अमार्जित सहजवृत्तियों और प्रवृत्तियों का वास्तव में त्याग करने के बजाय बस दंड और कष्ट सहने से ही उसका काफी सुधार और प्रायश्चित्त हो रहा है। ऐसा करने से हम प्रायः स्वयं को धोखा देते हैं, कठोरतम शारीरिक तपस्या के पर्दे के पीछे अपनी बुराइयों को छिपाकर बनाये रखने में सफल होते हैं।

परन्तु वास्तविक तपस्या का सम्बन्ध शरीर और उसके सुख या सुखाभाव से नहीं है, उसका सम्बन्ध है आन्तरिक सत्ता से, चेतना और उसके निर्देशों तथा गतियों से। तपस्या -तपश्चर्या है साधारण चेतना के नीचे की ओर के खिंचाव पर प्रतिक्रिया करने में, उसे उच्चस्तरों की लय-ताल की ओर मोड़ उसके साथ समस्वर करने में। अधोमुखी खिंचाव की शक्ति का विरोध करना, सत्ता और चेतना की विशुद्धता और प्रकाशमय शिखरों की ओर निरविश्राम यात्रा करना -यही है तपस्या, कठोर व्रत, सच्ची तपश्चर्या।

उच्चतर लोकों जाना यही है कार्य, यही है परिश्रम। अधिकाधिक विशुद्ध शिखरों की ओर इस अथक आरोहण में ही बहादुरी है। इसका अर्थ होता है चेतना का विकास, चेतना का उत्थान और विस्तरण, चेतना को अज्ञानमय अहमात्मिका गतियों को सीमाओं से मुक्त कर उच्चतर आलोकों के प्रदेशों की ओर आध्यात्मिक चेतना ओर आत्मज्ञान की ओर, भगवान और वैश्य तथा परात्पर वास्तविकता के साथ सम्मिलन स्थापित करने की ओर अभिमुख कर आगे बढ़ाना। यही है वास्तविक कार्य और परिश्रम।

शारीरिक कष्ट कोई चीज नहीं है, वह चेतना के इस प्रकार ऊपर उठने का श्रम करने का कोई चिह्न नहीं है और न उसकी कसौटी है। वास्तव में, जिस तपस् शब्द से तपस्या शब्द निकला है उसका अर्थ है चेतना की शक्ति। तपस्या चेतना के आरोहण और विस्तरण के लिए उस शक्ति को व्यवहार में लाना है। आवश्यक चीज है यही आन्तरिक व्यायाम, न कि उसकी व्यर्थ शारीरिक छायामूर्ति जो कि साधारणतः पूजी जाती है।

साभार - अदिति-2018



जो हमें अपने पथ पर मिलते हैं

जीवन हमेशा हमारे रास्ते में, एक या दूसरे रूप में, ऐसे व्यक्ति प्रस्तुत करता है जो किसी-न-किसी कारण हमारे निकट होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति, जैसा वह स्वयं होता है, उसी के अनुसार अपना वातावरण बना लेता है। यदि यही हमारी प्रधान कर्म - प्रवृत्ति हो तो वे सभी व्यक्ति, जिनसे हम जीवन-पथ पर मिलते हैं, ठीक वे होते हैं जिनके लिए हम अधिकतम उपयोगी हो सकते हैं।

जो निरन्तर आध्यात्मिक चेतना में निवास करता है उसके लिए उसके साथ घटने वाली सभी घटनाओं का एक विशेष अर्थ होता है और वे सब उसके उत्तरोत्तर विकास-क्रम में हमेशा सहायक होती हैं। ऐसा व्यक्ति अपने सभी सम्पर्कों का उपयोगी अवलोकन कर सकता है, उनके ऊपरी और गहन कारणों का अध्ययन कर सकता है और अपनी उपकार-भावना से प्रेरित होकर वह यह जानना चाहेगा कि इन विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों में से प्रत्येक का वह क्या हित कर सकता है। आध्यात्मिकता का जितना अंश उसके अपने अन्दर होगा उसी के अनुपात में उसका कार्य भी आध्यात्मिक प्रभाव डालने की शक्ति से युक्त होगा, यह प्रभाव कम या अधिक हो सकता है, पर होगा अवश्य।

- 'श्रीमातृवाणी', खण्ड 2, पृ. 80

आश्रम की गतिविधियाँ

5 दिसम्बर : महासमाधि

5 दिसम्बर, 1950 को श्री अरविन्द ने अपने महत् उद्देश्य की पूर्ति हेतु पार्थिव शरीर का परित्याग कर दिया था। यह दिन श्री अरविन्द आश्रम में महासमाधि दिवस कहलाता है। इस दिन आश्रम में कृतज्ञ नीरवता के साथ गुरु-स्मरण हुआ। सुबह 9 बजे 'द मदर्स स्कूल' के विद्यार्थियों ने पुष्पांजली के साथ समाधि के निकट भक्तिगीतों द्वारा श्रद्धांजलि अर्पित की। मिराम्बिका विद्यालय के विद्यार्थी भी इस



पुष्पांजलि में सम्मिलित हुए।



संध्या समय समाधि के चतुर्दिक-दीप प्रज्ज्वलित किए गए। ध्यान कक्ष में तारा दीदी ने डा.आयंगर द्वारा लिखित श्री अरविन्द के शरीर त्याग एवं उन्हें समाधि दिये जाने (5 दिसम्बर से 9 दिसम्बर) तक के वर्णन का भावपूर्ण पाठ किया। तत्पश्चात प्रसाद वितरण किया गया।

25 दिसंबर : क्रिसमस

क्रिसमस (बड़ा दिन) का त्योहार धूम धाम से मनाया गया। आश्रम प्रांगण में विभिन्न प्रकार के खेल-आयोजित किए गए। प्रातःकाल आश्रम के व्यावसायिक (वोकेशनल) प्रशिक्षार्थियों ने गीत गाए।

इस दिन दोपहर के समय आश्रम परिवार के सभी सदस्यों को स्नेहोपहार दिए गए। संध्या समय ध्यान कक्ष में भक्तिगीत के बाद तारा दीदी ने श्रीमाँ का संदेश पढ़ा।

31 दिसम्बर 2019 से 1 जनवरी 2020

आश्रम ध्यान कक्ष में अखण्ड सवित्री पाठ चलता रहा। रात्रि भोजन के पश्चात आश्रम के बच्चों ने गीत, नृत्य, कविता-पाठ करते हुए 2019 को अलविदा कहा तथा नववर्ष के स्वागत हेतु ध्यान कक्ष को प्रस्थान किया गया। मध्यरात्रि-ध्यान के साथ उपस्थित सभी लोगों को कलैण्डर तथा नववर्ष हेतु श्रीमाँ का सन्देश पत्र दिया गया, तत्पश्चात प्रसाद वितरण हुआ।



20 जनवरी: अनिल जी का जन्मदिन



20 जनवरी 2020 श्री अनिल जौहर (आश्रम के भूतपूर्व चेरयमैन) के जन्म-दिन पर उन्हें स्मरण करते हुए आश्रम तथा मदर स्कूल के सदस्यों को भेंट स्वरूप पुस्तक वितरित की गई तथा सभी कर्मियों को उपहार भेंट किए गए। संध्या समय-ध्यान कक्ष में वाद्य संगीत का विशेष आयोजन किया गया जिसमें श्री फतेह सिंह गंगानी एवं श्री हिमांशु दत्त ने क्रमशः तबला तथा मुरली वादन द्वारा स्नेह पुष्प अर्पित किए।

26 जनवरी: पुण्य-तिथि देवी (करुणामयी) 2020

श्री अरविन्द आश्रम (दिल्ली शाखा) की गहन साधिका देवी करुणामयी की पुण्य-तिथि के अवसर पर उनके गुरु भाई उस्ताद शमी खान ने स्मृतांजलि अर्पण करते हुए शास्त्रीय गायन तथा उनके साथ श्री योगेश गंगानी ने तबला एवं उस्ताद गुलाम मोहम्मद ने सारंगी वादन प्रस्तुत किया।



12 फरवरी: आश्रम-स्थापना-दिवस

12 फरवरी 2020 को आश्रम स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में फिल्म दिखाकर आश्रम के युवा वर्ग को आश्रम-स्थापना की कथा से अवगत कराया गया। आश्रम प्रांगण में इस दिन विशेष उल्लास छाया रहा। शाम के समय समाधि के चतुर्दिक अभीप्सा के दीप प्रज्वलित किए गए। ध्यान कक्ष में भजन गाए गए।



विभिन्न गतिविधियो पर दृष्टि.....





मैं सदा तुम्हारे साथ हूँ । समकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों में, मैं तुम्हें कभी नहीं छोड़ूंगी, यहाँ तक कि जब तुम डूबते हो, मैं तुम्हारे साथ हूँ । मैं किनारे पर खड़े रहकर दूर से केवल देखती नहीं, मैं तुम्हारे साथ डूबती हूँ, मैं तुम्हारे अन्दर हूँ क्योंकि, 'मैं तुम हूँ' (I am you)”

... श्रीमां